रहमान का बेटा

उन्नीस राजनैतिक कहानियां

विष्णु प्रभाकर

रहमान का बेटा

—चुनी हुई उन्नीस राजनीतिक कहानियां—

लेखक

श्री विष्णु प्रभाकर, बी० ए०

नवयुग साहित्य सदन,

इन्दौर

प्रकाशक
गोकुलदास धूत
नवयुग साहित्य सदन,
इन्दौर।

Durga Sah Municipal Library,
Almora
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
अल्मोड़ा
Class No. [illegible]
Book No. [illegible]
Received On [illegible]

पहली बार
मूल्य
अढ़ाई रुपया

1468

मुद्रक
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली, १९-४७।

जीवन भर नौकरशाही की दासता
करने पर भी
जिनका हृदय देश-प्रेम से
छलकता रहा
उन्हीं लोगों के प्रतिनिधि स्वरूप
अपने मामाजी
श्री प्यारेलाल गुप्त
को

परिचय

श्री विष्णु प्रभाकरजी हिन्दी के उन गण्यमान्य कहानी-लेखकों में हैं जो व्यंजना-चातुरी दिखाने के लिए नहीं बल्कि जीवन के अनुभव की मार्मिक अभिव्यक्ति करने के लिए कहानियां लिखते हैं। इसीलिए उनकी लगभग दो सौ कहानियों में, जो अब तक हिन्दी के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं, व्यक्ति और समाज के वैविध्यपूर्ण जीवन के हर्ष-विमर्ष, आशा-निराशा और उत्थान-पतन का ऐसा सजीव सत्यात्मक चित्रण मिलता है कि पाठक हास्य और करुणा, प्रेम और ग्लानि की भावनाओं में अनायास डूबने-उतराने लगता है और यही विष्णुजी की कला की सफलता है।

'आदि और अन्त' के पश्चात् यह दूसरा संग्रह पाठकों के सम्मुख है। आशा है कि इसका समस्त हिन्दी-जगत् में और जोरदार स्वागत होगा; कारण इसमें संग्रहीत कहानियाँ न केवल सामाजिक महत्त्व की हैं, वरन् उनका संदेश अधिक व्यापक और प्रखर भी है। 'वे दोनों', 'रहमान का बेटा', 'अरुणोदय', 'सुराज', 'खण्डित पूजा', 'धरोहर' और 'आजादी' आदि सभी कहानियां कला की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं; परन्तु साथ ही गतवर्षों में युद्ध, अकाल और साम्प्रदायिक वैमनस्य और हिंसा-अहिंसा के कारण हमारे देश के जीवन में जो वीभत्स नारकीय काण्ड हुए हैं उनकी पृष्ठ-भूमि में विष्णुजी ने ऐक्य, स्नेह, सौहार्द, प्रेम और सहानुभूति की उन अखंड, अटूट स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्तियों का उद्घाटन किया है जिनके कारण मनुष्य की आशा का

दीपक आज भी हमारे भावी-पथ को आलोकित कर रहा है। इस दीपक की लौ को बुझने से बचाना ही आज का प्रमुख संघर्ष है। विष्णुजी की कहानियों का यही प्रगतिशील संघर्ष है। विष्णुजी की कहानियों का यही प्रगतिशील संदेश है।

आशा है हिन्दी के पाठक इस संग्रह की कहानियों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करेंगे और उनके कृती लेखक का हृदय से अभिनंदन करेंगे।

तीमारपुर, दिल्ली
१-४-४७

—शिवदानसिंह चौहान

विषय-सूची

१.	भाई साहब	१
२.	मुक्ता	१३
३.	दीप जले ये घर-घर	२५
४.	वे दोनों	३५
५.	गर्विता	४५
६.	हरीश पाण्डे	५६
७.	आत्म-ग्लानि	६३
८.	खंडित-पूजा	७४
९.	बेटे की मौत	९०
१०.	हमें गिरानेवाले	९९
११.	सुराज	१०९
१२.	धरोहर	१२०
१३.	आजादी	१३२
१४.	द्वन्द्व	१४०
१५.	सुनो, ओ मां !	१५१
१६.	अरुणोदय	१६४
१७.	क्रान्तिकारी	१७९
१८.	नया राजा	१९३
१९.	रहमान का बेटा	२०२

लेखक की अन्य रचनायें

१. आदि और अन्त—	कहानी-संग्रह—	प्रदीप कार्यालय
२. इन्सान—	एकांकी—	हिन्दी ज्ञान मन्दिर
३. क्रान्ति—	एकांकी	(प्रेस में)
४. सफर के साथी—	कहानी	,,
५. जीवन एक कहानी		,,
६. निशिकान्त—	चरित्र-अध्ययन	,,
७. ढलती रात—	उपन्यास	,,

: १ :

भाई साहब

बहुत दिनों से यह बात शेखर के दिल में खटक रही थी। आज उसने एक चिट्ठी पाकर अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। सांझ को जब अखिल लौटने वाला था, तो उसका हृदय क्रोध से फटा पड़ता था।

'मैं अब उसे अपने पास नहीं रख सकता। जब वह मेरी बरबादी पर तुला हुआ है, तो मैं ही क्यों मोह-ममता में फँसा रहूँ? सौभाग्य से डिप्टी कमिश्नर से दोस्ती है, पुलिस-कप्तान मिलने वाला है; नहीं तो मैं कभी का मिट चुका होता।

'नहीं! मैं नहीं मान सकता। समाज में समानता कभी हो ही नहीं सकती। विरोध और विभिन्नता तो जीवन का आदि मन्त्र हैं और आवश्यक भी। कैसे ये लोग एक अकर्मण्य को कर्मठ मनुष्य के बराबर बनाते हैं? साम्यवाद, समष्टिवाद और समाजवाद, यह सब आवारा और आराम-तलब आदमियों के दिमाग़ की उपज हैं.....'

तभी पैड़ियों पर खट-खट की आवाज़ सुनाई दी। देखा अखिल आया था। चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। पुकारा—अखिल!

अखिल ने कहा—भइया! और वहाँ आ खड़ा हुआ।

शेखर ने होठ काटकर अखिल की ओर देखा। वह शान्त खड़ा था। सोच रहा था—भइया न जाने क्या कहेंगे? आज फिर आसार बिगड़े नज़र आते हैं।

शेखर ने मेज़ पर से चिट्ठी उठाई और अखिल की ओर फेंककर कहा—मैं कहता हूँ, आज इसका निर्णय हो जाना चाहिए।

अखिल ने चिट्ठी उठा ली। पुलिस-कप्तान ने लिखा था—आपका भाई अखिल क्रान्तिकारियों के साथ मिलता रहता है। अगर आप उसे रोक नहीं सके, तो मुझे दोष मत दीजिएगा...

चिट्ठी उसने पढ़ ली और लौटा दी। लेकिन कहे क्या? चुप होकर खड़ा रहा। वह डरता नहीं। जानता है, जो लिखा है, ठीक है। भइया उसे घर से चले जाने को कहेंगे, वह चला भी जा सकता है। उसका जो ध्येय है, सिद्धान्त है, उसे तो वह नहीं छोड़ेगा। वह भी मानता है, रोज़-रोज़ की झिक-झिक ठीक नहीं। भइया जो कहते हैं वह भी ठीक है क्योंकि वह उनकी बात है।

यही बात उसके दिमाग में आ रही है। कुरसी की पीठ पकड़े इन्हीं विचारों को कुरेद कुरेद कर कहने की बात सोचता है, लेकिन सूझता कुछ नहीं।

शेखर भइया भी लाल-लाल आँखें किये देख रहे हैं। सोच रहे हैं—नहीं बोलता, मेरे बिरते पर ही तो साम्यवाद की डींग हाँकता है! पेट भर खाने को मिल जाता है, तभी समाजवाद का भूत सवार होता है; लेकिन मैं अब इस भूत को उतार कर ही रहूँगा। जब पैसे-पैसे को मुहताज होकर कंकड़ को हीरा समझेंगे, तब सूझ पड़ेगा, समाज क्या चीज़ है.....।

'हाँ तो मैं पूछता हूँ, तुम कब तक मेरा सत्यानाश करते रहोगे?'

अखिल ने सिर उठाकर कह दिया—'मैं आज ही चला जाऊँगा, भइया।'

भइया का क्रोध और उबल पड़ा। क्षमा प्रार्थी होना तो दूर, आप अकड़ते हैं, जैसे बाहर की सारी दुनिया में आपके सगे-सम्बन्धी बसते हैं और हम घर वाले दुश्मन! बोले—कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट 'सुनता

हूँ। चले जाओगे। जाओ! अभी निकल जाओ! मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता!'

अखिल को क्रोध आ गया—'कहता हूँ, नहीं आऊँगा। आप अपने वैभव को सँभालिए। मैं इसको क्यों चाहूँ? यह क्या मेरी चीज़ है? सच तो यह है, मैंने इसके लिए परिश्रम ही कब किया है? आप अब सुख की नींद सोइये। मैं जाता हूँ।' अखिल झपटकर निकल गया।

शेखर ने नौकर को आवाज़ दी। वह अब क्रोध के मारे पागल हो रहा था—सोदान, सोदान!

सोदान आया। गया कहाँ था? दरवाज़े से हटकर खड़ा था और सुन रहा था निष्प्राण होकर उनकी बातें।

'सुनते हो! अखिल के लिए मोटर ले आओ।'

सोदान लौट चला।

'मैं कहता हूँ, तुम भागे क्यों जा रहे हो? सुनो, वह जो कुछ भी चाहे मोटर में भर दो। न आवे तो लॉरी मँगा लो।'

सोदान ने सुन लिया। लेकिन खड़ा रहा। कहीं वह कुछ और न कहें।

अब शेखर ने झिड़क कर कहा—जाओ! खड़े-खड़े क्या देखते हो?

सोदान चला गया। शेखर अकेला रह गया—मैंने ठीक ही तो किया है। ग़रीबी उसके लिए दूरस्थ प्रेमिका की तरह उपासना की वस्तु क्यों रहे? वह उसके लिए मरता है, उसे अपनी चिरकामनाओं का प्रसाद समझता है। जब वह ग़रीबी से ऐसा प्रेम करता है, तो अमीरी में क्यों रहे? ढूँढ़े उसे, पायेगा क्यों नहीं? तब देखूँगा, कैसे वह जीवन को समझता है। साम्यवाद के वे अनन्य पुजारी कितनी देर तक उसका साथ निभाते हैं.....

अब वह बैठ गया। फाउन्टेन पेन निकाल कर पैड पर कुछ लिखा। क्षण भर ठुड्डी पर हाथ रखकर कुछ सोचा, फिर चिट्ठी को करीने से मोड़ कर लिफ़ाफ़े में बन्द किया। पुकारा—सोदान!

कोई नहीं बोला।

झुँझला पड़ा। कितने शैतान हैं ये लोग! नहीं सुनते, और इन्हीं के लिए अखिल चाहता है समानता.....

और तभी ख्याल आया—अरे हाँ, वह तो अखिल के साथ गया है।

(२)

घर के अन्दर बैठी है अमला। बैठी क्या है, सोच रही है—बाहर इतनी सरदी पड़ रही है और ये लोग ज़ोर-ज़ोर से बोल कर गरमी पैदा कर रहे हैं। संघर्ष से ही तो उष्णता का जन्म होता है न! अमला से क्या कुछ छिपा है? दिन-दिन की बात जानती है वह। पर गई नहीं। जाकर क्या अपना अपमान करवाती?

चुपचाप बैठी रही। नौकरानी चौका-बरतन करके चली गई। मिसरानी न जाने कब की बैठी ऊँघ रही है। खाना-पीना हो ले, तभी तो जावे। और आज कुछ नई बात है, यह वह जानती है। करे क्या, बड़े घर की बड़ी बातें। आग बुझ गई.....भाजी ठण्डी हो गई, तो बाबू एक कौर भी नहीं तोड़ेंगे। छेपटी और तिनके तोड़-तोड़ कर आग सुलगाने लगी।

अमला ने आकर कहा—'बड़ी मां! तुम अब जाओ। बाहर बरफ़ पड़ने लगी है।' अन्धा क्या चाहे, दो आंखें! बड़ी मां रुकी नहीं। चली गई। दरवाज़ा बन्द करके अमला फिर कमरे में आ बैठी। अँगीठी ठंडी होने लगी थी। कोयले डाल दिये, फिर लहक उठी। सोचने लगी—ऐसे जाड़े में भी लोग बाहर सड़क पर पड़े होंगे। हम उन्हें कैसे जानें? क्यों वे ऐसे रहते हैं? अखिल कहता है—हमारा पाप उन्हें खा रहा है। वे (शेखर) कहते हैं, उनके पूर्व जन्मों के बुरे कामों का फल है। पुनर्जन्म किसने देखा है? सुना है, परम्परा से लोग ऐसे ही कहते आये हैं। अखिल की बात भी कैसे मानें, कैसे समझें? हमारे पाप का दंड वे क्यों भोगें। दण्ड तो अपराधी को ही मिलता

है, दूसरे को नहीं। इसीलिए तो उनकी बात सरल है। तभी लोग उसे मानते हैं.....

'अमला'—उसने सुना। पीछे न जाने कब से शेखर खड़ा था।

उसने सीधे स्वभाव कहा—भोजन लाऊँ ?

भोजन में शेखर का ध्यान नहीं है। वह अपनी बात कहता है—अमला ! आखिर वह चला ही गया।

'कौन !' वह जानती है फिर भी पूछती है।

मैं कहता हूँ, जब सिद्धान्त नहीं मिलते तो अपने रास्ते पर चलना ही ठीक है। अपनी बात के लिए दूसरे को कष्ट देना कहाँ का न्याय है ? अच्छा। छोड़ो इन बातों को। तुम जानती हो, भला वह जाया कहाँ करता है ?

अमला अलिप्त-सी बोली—नहीं जानती। पर सुनती हूँ, वह अक्सर अनन्तगोपाल की बैठक में देखा जाता है।

शेखर ने कहा—तो अखिल की सारी किताबें वहीं भिजवा दो। ऐसी क्रान्तिकारी पुस्तकें मैं अपने घर में नहीं देखना चाहता।

नौकर चाकरों से भरे हुए घर में यह भी क्या अमला के करने की बात है ? इसलिए क्या कहे ? चुपचाप आग कुरेदने लगी।

शेखर फिर खुली छत पर आ गया। खूब ठण्ड पड़ रही थी। कहते हैं कल बर्फ़ जम गई थी। आज आसमान साफ़ था, निपट नीला, चन्द्रमा भी निकल आया था, लेकिन उसने ध्यान नहीं दिया, घूमने लगा। उमड़-घुमड़ कर विचार आते रहे—मेरा ख़याल है वह अब लौट कर नहीं आवेगा। जानता हूँ सिद्धान्त पर उसे समझौता करना नहीं आता, पर खरे आदमी कब दुनिया में सफल होते हैं...ओह ! दांत कट-कट करने लगे। बड़ी सरदी है.....

तभी अमला ने पुलओवर लाकर उसके कन्धे पर डाल दिया। धीरे-धीरे बांह भी ठीक कर दी।

शेखर ने कृतज्ञता से गद्-गद् होकर अमला की ओर देखा—क्या बज गया, अमला ?

'यही दस का समय होगा'—कह रही है और अँगीठी की ओर बढ़ रही है। 'और देखो अमला ! उस अखिल के जितने भी पुलओवर और गर्म कोट हैं, सब को उस चमड़े के बड़े बक्स में बन्द करके अनन्त बाबू की बैठक में भेज देना; मैं क्यों उसकी चीजें अपने घर रखूं ? कहना उसके सिर पर पटक कर आवे। 'अच्छा !' शान्त भाव से अमला ने कहा—जैसे जानती है क्या कुछ होने वाला है। और जो कुछ होता जाता है उसको देखकर कहती जाती है— अच्छा ! यह भी हुआ, अब और चलो.....

शेखर अन्दर आकर कुर्सी पर बैठ गया। तापने लगा। सामने अमला बैठी थी। उसे देखने लगा। लेकिन उसे देख पावे जब न ? बार-बार अखिल का ख़याल घूम रहा है...ये लोग अपनी जेब का फाउण्टेनपेन निकाल कर फेंक नहीं सकते। रिस्टवाच बिना रहा नहीं जाता। हमसे कहते हैं तुम कार न रखो, रेडियो का उपयोग मत करो।

तभी सोचा—उसी दिन तो प्यारेलाल एण्ड सन्स के यहाँ एक कार का आर्डर दिया है। सोचा था यह कार अखिल के काम आवेगी। कल आने पर उसे भी भेज दूंगा। दो का मुझे करना भी क्या है ? अमला ही तो है।.....

अमला ने कहा—मुझे नींद लगी है। सोऊँगी। बज भी तो गये ग्यारह ! जाती हूँ।

देखा—अमला चली गई। दिल में उठने लगा—यह अखिल जो है, इतना अडिग क्यों है। इसे कमी किस बात की है ? फिर भी 'आ बैल मुझे मार' वाली बात क्यों ? अरे ! उनसे पार कैसे पड़ेगा ? उनके पास शक्ति है, साधन हैं। मस्तक में विचार है और हाथ में करने की हिम्मत। हमारे पास विचार ही तो हैं, सो भी व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न...

'अमला !'

नहीं बोली—सो तो वह सकती नहीं। चुपचाप स्वामी को जैसे टटोलना चाहती है।

वह उठा—अमला ! आज क्या खाना नहीं बना था ?

मुंह ढके ही ढके वह बोली—बना था। लाऊँ क्या ?

क्या वह भी खाने का वक्त था ? आधी रात को !...

अमला उठी। थाली परोस कर ले आई। टेबल पर रखकर तापने लगी।

शेखर खाते-खाते भी सोचता रहा। था क्या, घूम फिर कर वही अखिल की बात—कल वह पुलिस कप्तान के पास जाकर सारी बात कह देगा। दिखा देगा राजभक्ति पर वह अपने सहोदर का भी बलिदान कर सकता है...लेकिन यह जो अमला है, अखिल की भाभी। इसने तो एक बार भी अखिल की बात नहीं पूछी। यह कैसे छिपा सकी है अपने स्नेह को। मां जब मरी थी, तब अखिल केवल दस वर्ष का था। तब से आज तक भाभी ने अपना बनाकर उसे पाला, जन्मदात्री मां से बढ़कर। तिस पर नारी की अमर-अभिलाषा का केन्द्र, सन्तान-स्वरूप कोई चिन्ह भी तो नहीं है उसकी गोद में !.....

पानी लाऊँ ? अमला ने पूछा।

शेखर को बुरा लगा। पता नहीं क्यों ? बोला—ले आओ।

अमला काँपती हुई पानी लाई। कुल्ला करके शेखर फिर अँगीठी के पास आ बैठा। अमला भी बैठी थी—अबकी बार कुछ-कुछ सटकर।

.....अखिल भला कहां होगा ? वह फिर सोचने लगा—उसे इस विचार से दुःख पहुँचा। मेरा उसका मतभेद है तो क्यों न हम अलग-अलग रहें ? मेरे विचार में बंटवारा हो जाना ठीक है। तब रहेगा तो वह इसीदुनिया में और मेरा उसका सम्बन्ध भी न रहेगा। सरकार भी तो यही चाहती है।

अब उसे प्रसन्नता होने लगी। अमला के कन्धे पर हाथ रखकर बोला—अमला ! देखो तो भला मेरी बैंक-पासबुक में कितना रुपया है ?

'देखती हूँ' और इधर उधर टटोल कर लौट आई। बोली—पचास हज़ार !

'अखिल की में !'

'पांच सौ !'

शेखर चौंक पड़ा—कुल पांच सौ। और क्या हुआ ?

'मैं क्या जानूं, किस-किस को बांटता फिरता है वह ?' और किताबें शेखर की गोद में डालकर आग तापने लगी।

उसने फाउन्टेन पेन निकाला और तीस हज़ार रुपये अखिल के नाम करने की बात सोचने लगा।

अब वह बहुत ठण्डा पड़ गया था। क्रोध कभी स्थायी नहीं होता। स्थायी घृणा है, जो संस्कार बन कर रोम-रोम में रम जाती है।

(३)

उसे बैठे-बैठे तीन बज गये। दूर सड़क पर पहरेदार की आवाज साफ़ सुन पड़ रही थी। कभी-कभी कुत्ते भूंकने लगते थे तो भोंकते ही चले जाते थे। नाटक-घर से लौटते हुए शौक़ीन बाबुओं के पैरों की चाप भी धीरे-धीरे दूर जा पड़ी थी।

अमला उठी—सोओगे नहीं क्या, अब ?

आता हूँ ! धीरे से उसने कहा।

अमला आकर पलंग पर लेट रही। सोना चाहती है, पर नींद नहीं आती। आंख मीच लेती है। ऐसे सांस लेती है, जैसे प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो। पर दूसरे ही क्षण चौंक पड़ती है—आंख मीचते ही धीरे-धीरे पास आकर कोई कह जाता है—भाभी, ओ भाभी ! भाभी जानती है कौन बोलता है। फिर भी अनजान बनकर पूछती है—कौन है रे, तू कौन ?

जब अब तक जानकर भी भूली रही, तो अब कैसे जाने कौन है वह !

शेखर भी उठा, धीरे से अमला की बग़ल में आ सोया। करवट बदल कर, कहीं अमला जाग न जावे। अमला जाग रही है। मुड़कर स्वामी की ओर देखा और मुंह फेर लिया। दोनों पास लेटे हैं, सटे हुए-से फिर भी ऐसे हैं, जैसे बहुत देर प्रवाह में तैरते-तैरते दो पाट आ मिले हों, अजान अनजान से।

दोनों जानते हैं। शेखर सोचता है—आजकल विद्रोह करना कितना सस्ता है, जैसे बच्चे का रूठ जाना और मरना, यह तो सिनेमा की तरह मनोरंजन का एक साधन बन गया है। जीवन को वे कुछ समझते ही नहीं, जैसे फूल सूंघा और पैरों तले रौंद डाला।..... मानता हूँ, जो दिन भर मेहनत करते हैं, उन्हें रात को भरपेट भोजन मिलना ही चाहिए, लेकिन एक को दूसरे के प्रति उकसा कर ये लोग क्या सफलता प्राप्त कर सकेंगे? मैं कहता हूँ, रहा सहा टुकड़ा भी छिनवा बैठेंगे। किसी भी युग में अधिकार अकड़ से नहीं मिलते। मुक्ति हमेशा बन्धन में ही प्राप्त होती है.....।

अमला भी सोच रही है, सोच क्या रही है, जानती है—अखिल के बिना घर सूना-सूना रहेगा। पति पत्नी दोनों एक मन होकर न रह सकेंगे। अखिल जैसे इन दोनों की सन्धि हो। दोनों तो रहेंगे पर दोनों को एक करने वाला न होगा और उसी के अभाव में दोनों होकर भी अस्तित्वहीन बने रहेंगे.....। सोचते-सोचते दोनों सो गये या सोने का नाटक करते रहे। कौन जाने? पर अमला जब उठी तो दिन ख़ूब चढ़ आया था। कुहरा इस ज़ोर का पड़ रहा था कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। चौक में नौकरानी बरतनों को लेकर खड़-खड़ कर रही थी। नौकर रसोई में पानी का बड़ा-सा टोपिया आग पर रखे बैठा था। बीच-बीच में दोनों बोलते भी जाते थे। 'सरदी क्या है, काल है। पारसाल इन्हीं दिनों नरेन की मां का धेवता या बंशीधर पाठक का बूढ़ा बाप या गनेश चतुर्वेदी का जवान बेटा निमोनिया की गोद में सो गया था। हर एक शब्द के साथ-साथ मानों वे कहना चाहते हैं—इस बार

हम भी इन्हीं में गिने जा सकते हैं···।

अमला ने पुलओवर की पेटी कसी और बाहर निकल आई। शेखर को लेटे ही रहने दिया। पुकारा—सोदान, सोदान!

सोदान दुतही में लिपटा-लिपटाया आया।

'जानते हो अखिल कहां-है?'

'अनन्त बाबू के घर।'

'तो कहो, भाभी बुला रही है।'

थोड़ी देर बाद शेखर भी उठा। अंगड़ाई लेकर पेटी कसी। आंखें मल कर देखा—बड़े-बड़े बक्स खोले अमला बैठी है। ठूंस-ठूंस कर भर रही है उनमें कपड़े। नहीं समाते तो खीझती जाती है। चारों ओर कपड़ों और किताबों का ढेर-सा लगा है।

उसने कुछ सोचा और सोदान को पुकारा।

सोदान उधर ही आ रहा था। आवाज के साथ ही कमरे में पहुंचा।

अमला उठी। जान गई थी अखिल आ गया है। बैठक में जाकर देखा बात ठीक थी। मेज पर सिर दिये अखिल बैठा था।

रोज़ की तरह उसने पुकारा—अखिल!

अखिल ने चौंक कर सिर उठाया। वह रो रहा था।

अमला ने धीरे से कहा—छिः! रोते हो? जानती हूँ, रात भर नहीं सोये।

और पास आकर उसका हाथ थपथपाती हुई बोली—तुम नहीं जानते, अखिल, तुम्हारे भइया को मैं जानती हूँ·····

अखिल रोते-रोते बोला—मैं उनसे क्षमा मांगने आया हूं, भाभी!

'सिद्धान्त पर समझौता करोगे अखिल?'

'नहीं भाभी। केवल सोचता हूँ, हिंसा मुझसे नहीं होगी। समय रहते इस बात को मानने में सिद्धान्त की हत्या नहीं होती; भाभी।'

'अच्छा, बैठो, मैं क्या जानूं तुम्हारी बातें, केवल तुम दोनों को

जानती हूँ।' फिर लौट चली। उधर से शेखर आ रहा था। रास्ते में ही मिल गया। वह उत्तेजित-सा हो रहा था—मैं कहता हूं, वह किसी भी क्षण आत्महत्या कर सकता है। सुनती हो अमला! सारी रात नहीं सोया। एक कपड़ा नहीं ले गया। कहता है जब जा रहा हूं, तो भइया की कोई भी चीज़ क्यों लूं, मैं इसे नहीं सह सकता।'.....

अमला सुन रही है। उसके लिए अचरज की बात कुछ भी नहीं है। सब कुछ जानती है। और वह कह रहा है—तुमने उसे बिगाड़ दिया, अमला! नहीं, वह तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। मुझे उसे बुलाना पड़ेगा।

बैठक आगई। वह भी है, अमला भी और अखिल भी मेज पर सिर रखे बैठा है।

शेखर अखिल को देखकर चौंक पड़ा।

अखिल ने सिर उठाया। कहा—भइया!...

अनमना-सा और बहुत कुछ सोचता हुआ शेखर कुरसी पर बैठ गया। बोला—कहो।

अखिल चाहता है क्षमा मांगे। पर शब्द ढूंढ़े नहीं मिलते। भइया फिर सिद्धान्त और ध्येय की बात कह बैठेंगे। रहेगा तो वह वहां है ही नहीं, फिर भी डरता है। नहीं बोला।

शेखर ने सोच-साच कर कहा—देखो, अखिल! मैं जानता हूँ, तुम अकेले कहीं भी नहीं रह सकते। तुम्हारे है कौन? यह अमला है, तुम्हारी भाभी; तुम्हारी मां! मैं भी उसके बिना नहीं रह सकता। इसलिए सोचता हूं, तुम कहीं मत जाओ। केवल मुझसे अलग होकर रहो।

अखिल के जी में आ रहा है, कह दे—नहीं भइया! मैंने अब सोच लिया है। जाऊंगा मैं अवश्य। केवल क्षमा मांगने आया हूं। आप मेरे लिए कष्ट क्यों भोगें और रहने में मेरी बात भी तो गिरती है?...

लेकिन कहता वह कुछ नहीं। सोचता हुआ बैठा है।

1468

और वह शेखर भइया जो है, विचारता है—जाने से तो यह और भी बिगड़ जायगा। अब तो हाकिम लोग मेरा लिहाज भी करते हैं। और तब···उसके सामने कई दृश्य खिंच गये। जेल की कोठरी, काला-पानी, फांसी और न जाने क्या-क्या! ओह! देश में एक क्रान्ति-सी जाग पड़ेगी। समाचार-पत्र उसकी बात छापेंगे। मैं क्या बचा रहूंगा? कहेंगे, उसका भाई था। कोई मुझसे सहानुभूति करेगा, तो कोई धिक्कारेगा।.....

नहीं, उसने निश्चय किया—मुझे अब खूब सोच-विचारकर कोई और निर्णय करना होगा। इसकी बात सोचने वाला और है भी कौन?

बस! अब उसने अभ्यासवश पुकारा—अमला! चाय भिजवाओ।

फिर अखिल से बोला—तुम तो चाय पीते ही नहीं, अखिल! जैसे उसे आज पहिले-पहल ही मालूम हुआ हो। और बोला—इसके लिए दूध ले आना।

अमला दूर कहां थी? उसके पीछे-पीछे आकर वहीं खड़ी थी। बोली—कल आगरे से जो पेठा आया है, वह भी ले आऊं क्या?

अरे हाँ, जरूर-जरूर, वह तो अखिल की मन भाती चीज है। यह भी क्या पूछनेवाली बात थी, अमला!

अमला हंसती हुई चली गई। अखिल आँखों में आंसू भरे विवश-सा बैठा रहा।

और शेखर? वह मेज पर पड़ी हुई चिट्ठियों के टुकड़े-टुकड़े करके अंगीठी में फेंकने लगा। नन्हें-नन्हें टुकड़े करके बड़ी सावधानी से फेंक रहा था। कहीं कोने में पड़ा हुआ टुकड़ा उनका अस्तित्व साबित न कर दे। टुकड़े जलकर राख हो गये, तो भी बेंत से कुरेद-कुरेद कर उन्हें कोयलों के नीचे उसने दबा दिया।

: २ :

मुक्ता

मुक्ता का मस्तिष्क अभी तक चकरा रहा था। उसके हृदय में अजीब सी टीसें चलने लगी थीं। ऐसा दृश्य उसने पहले नहीं देखा। उसने सुना था कि युद्ध, तूफान, विद्रोह और महामारी के समय अनेकों आदमी इतनी शीघ्रता से मरते हैं कि उनको ठिकाने भी नहीं लगाया जा सकता। उनकी लाशें सड़ती हैं और उनकी बदबू से दुनिया की हवा गन्दी होती है परन्तु……।

उसके मस्तिष्क में खून और क्लोरोफार्म की बदबू एक साथ भर गई। उसके सामने वे बेतरतीब और भद्दी लाशें आगईं, जिन्हें वह अभी-अभी अस्पताल में छोड़ आई थी। उनमें से अनेकों के हाथ पैर टूट गये थे। कितनों का सिर फट गया था, आंतें बाहिर निकल आई थीं। वे रक्त से लिथड़े पड़े थे और उनके शरीर गोलियों से छिद गये थे। उनमें जो सदा के लिये मुक्त हो चुके थे, वे भाग्यशाली थे, परन्तु जो शेष थे; उनके चीत्कार से मौत का कलेजा थर्रा उठता था और वह उनके पास आने से कांपती थी……।

मुक्ता ने घबरा कर आंखें मींच लीं। वह अपने पलंग पर चित्त लेट गई थी और उसका रोम रोम एक असहनीय वेदना से कसक रहा था। आखिर यह रक्तपात क्यों होता है? क्यों मनुष्य-मनुष्य को मारता है? कहते हैं देश गुलाम है, आजादी का युद्ध चल रहा है। उसमें मनुष्य साधन है, साध्य तो आजादी है, पर आजादी किसके

लिये ? मनुष्य के लिये ! फिर मनुष्य का नाश क्यों·····।

इस प्रश्न का उत्तर भी वह जानती है। मनुष्य किसी ठोस या स्थिर वस्तु विशेष का नाम नहीं है। वह तो सतत प्रवाहवान शाश्वत शक्ति है। परन्तु ऐसा है, तो क्यों एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर शासन करना चाहता है ? क्यों ? प्रश्नों का कोई अन्त नहीं है। उत्तर भी अनगिनित हैं, परन्तु समस्या का सुलझाव कहीं नहीं हैं। दार्शनिक कह सकता है, सुलझाव का न होना ही दुनिया के अस्तित्व का कारण है। उलझन जीवन है और सुलझन मौत। कैसी विडम्बना है·····?

उसका मस्तिष्क झुंझला उठा—क्या मुसीबत है ? आज क्यों ये प्रश्न मेरे मन में उठे हैं ? क्यों वह इतनी दार्शनिक, रहस्यमय, दुखी और त्रस्त हो उठी है। नहीं, नहीं, मैं अब नहीं सोचूंगी। सोचना पाप है। और वह उठ कर बैठ गई। उसके पास ही निवार के छोटे खटोले पर उसका एक मात्र बच्चा लेटा था। वह गहरी नींद में था। उसका मुंह खुल गया था। उसकी आंखें मिच गई थी। उसके हाथ पैर शान्त मुक्त फैले थे। मुक्ता ने आज उसे ध्यान से देखा। कई क्षण देखती रही, तभी न जाने क्यों उसकी आंखें झपकीं। उनमें पानी भर आया·····।

आंखों में पानी—वह चिहुंक उठी। उसने रूमाल से उन्हें एक दम पूंछ डाला। वह उठ खड़ी हुई। बोली—मैं कातर नहीं हो सकती, नहीं हो सकती। मैंने उनसे प्रतिज्ञा की है।

और फिर उसकी आंखों के सामने वे सब दृश्य आकर चित्रित हो गये, मानो वह उसी जीवन को अब भी जी रही है। उसके पति देश की आजादी के लिये पागल थे और उसी के लिये वे हंसते हंसते एक दिन फांसी पर चढ़ गये। उन्हीं के ज्ञान की बदौलत उसका दिल धनी है। उन्हीं का बलिदान उसकी सम्पत्ति है, जिसपर उसे ही नहीं, समूंचे देश को गर्व है। जैसे ही वह कातर होती है, उसे वे अंतिम क्षण याद आ जाते हैं। उन्हें उस दिन फांसी दी जाने वाली थी।

वह अन्तिम बार उनसे मिलने जा रही थी। उसकी गोद में दुधमुहां बालक था। साथ में देवर था, मां थी। सब त्रस्त और कातर थे। मां की आंखें रोते रोते सूज गई थीं, परन्तु उसे न रोने की आज्ञा थी, न सिसकने की।

गाड़ी के दूसरे यात्रियों ने उन्हें देखा, देखते रहे। वे समझ रहे थे, ये लोग जरूर विपता के मारे हैं, पर दुनिया तो दुनिया है। उसका काम अपने रास्ते पर चलना है। यात्री आये और गये, पर इसी आने जाने में एक व्यक्ति ऐसा निकल ही आया, जिसके मन को उनकी वेदना ने छुआ। उसने पूछा—आप लोग दुखी हैं! क्या बात है?

मुक्ता के देवर ने उदासीन भाव से कहा—दुनिया है, इसमें सुख दुख चलते ही रहते हैं।

जी फिर भी···।

देवर ने अब प्रश्नकर्त्ता की ओर देखा, फिर धीरे से कहा—आपने कमल का नाम सुना होगा।

कमल—वह फुसफुसाया—कमल! राजद्रोही कमल! उसे कल फांसी होगी। तो क्या···।

जी।

पूछने वाले का दिल सहसा करुणा और आदर से भर उठा। उसका साथी फुसफुसाया—कमल! कमल के ये कौन हैं?

ये कमल के कुटुम्बी हैं।

इसी तरह तीसरा, चौथा, पांचवां। फिर तो सभी ने पूछा—ये कमल के कौन हैं?

कमल राजद्रोही है! कमल को फांसी होगी? कमल बहादुर है! कमल जैसों के कारण ही देश देश है·····।

नहीं तो···।

'नहीं तो गधों से बदतर हैं सब लोग। आदमी क्या गुलाम होने के लिये पैदा हुआ है।'

जी, आप ठीक कहते हैं।

पर यह बहस आगे नहीं बढ़ सकी। पास के कुछ लोग दूर हट गये। स्वर मात्र फुसफुसाहट में बदल गया। स्टेशन आया। दो एक पुराने यात्रियों ने एक नजर से उन्हें देखा, फिर आह भरकर नीचे उतर गये। मन में कहा—कैसी दुनिया है? आज जो पत्नी सधवा है, जो मां सपूती है, वही कल पति और पुत्र को खोकर विधवा और निपूती हो जायगी।

दूसरे ने कहा—कितने बहादुर हैं ये लोग? जानबूझ कर फांसी पर चढ़ जाते हैं।

तीसरा बोला—बिना प्राण दिये आजादी नहीं मिलती?

फिर नये यात्री चढ़े। शोर मचा। तभी एक पुराना यात्री धीरे से फुसफुसाया—शोर न मचाइये।

नवागन्तुक कुछ तेज होकर बोला—क्यों? आपका क्या जाता है?

कुछ नहीं मेरे दोस्त।

तो फिर।

फिर यही कि कमल की मां और पत्नी इसी डिब्बे में हैं। वे दुःखी हैं।

कमल! कौन कमल?

जी वही क्रान्तिकारी। कल उसे फांसी होगी।

नवागन्तुक का स्वर एक दम गिर गया। कांप कर धीरे से बोला—कमल इस डिब्बे में हैं। मैं अगले स्टेशन पर उतर जाऊंगा।

कुछ ऐसे भी थे, जिन्हें इन बातों की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। वे टैंक की भांति चढ़े, मशीन की तरह चीखे और धुएं की तरह कालख पैदा करके चले गये।

और मुक्ता! वह सब ओर से आंखें मूंदे केवल एक ही दृश्य देखती थी। एक ही मूर्ति रह-रह कर उसकी आंखों के आगे आकर खड़ी हो जाती थी। वह मूर्ति जो इन पांच वर्षों में उसकी आशाओं

और कामनाओं का केन्द्र रही है, जिसकी ओर देखकर उसने मुस्कराना सीखा था, जिसकी उपस्थिति उसकी छाती में गुदगुदी पैदा कर देती थी, वही मूर्ति अब अन्तिम बार उसके सामने आने वाली है।

अन्तिम बार।

हां, अन्तिम बार! फिर वह उसे इन पार्थिव आंखों से नहीं देख सकेगी, यद्यपि वह महसूस करती है, कमल कभी भी उससे अलग नहीं हो सकता।

और फिर वह क्षण·····।

मुक्ता, कमल की मां और भाई के साथ जेल के एक कमरे में बैठी थी। उसकी छाती में रुदन भरा था। उनका मन उत्सुक, व्यग्र, दुखी, अशान्त अन्दर के किवाड़ों की ओर उड़ा जा रहा था···।

कि किवाड़ खुले, सिपाहीने कहा—कमल जाने वाला है, जल्दी करो।

वे हड़बड़ा कर उठे। बाहर सूर्य का प्रकाश चमक रहा था। पक्षी चहक रहे थे। दूर कुएं पर माली की गहरी गम्भीर आवाज गूंज उठी थी और सामने तीन-चार गम्भीर व्यक्तियों के बीच खड़ा था—कमल·····।

वह शांत निर्द्वन्द्व मुस्करा रहा था। उसके चेहरे पर अद्भुत सौम्यता मुखरित हो उठी थी। उसने उत्फुल्ल होकर कहा, मां! तुम अच्छी हो! और नरेन और·····।

कमल, देखो वह पीछे कौन हैं?

कमल ने आंखें उठाकर मुक्ता को देखा। वह हंस पड़ा। उसने चुटकी बजाकर बच्चे का ध्यान आकर्षित किया। बच्चा पहले चौंका, फिर निश्छल मन से मुस्कराया। मुक्ता ने एक बार बच्चे को देखा, फिर कमल को। जी में उठा पगली, ये हंसते हैं तू भी हंस।

तभी सुना, कमल ने कहा—तुम्हें जीना है अपने लिए, अपने देश के लिये और सबसे बढ़ कर देश की इस धरोहर के लिए।

वह कांपी। शब्द ओठों पर आकर रह गये।

उसने फिर कहा—रोना कायरता है। व्यक्ति परम्परा की एक कड़ी मात्र है। मानव के इस क्रम को अक्षुण्ण रखना तुम्हारी जिम्मेवारी है।

शब्दों ने अब भी साथ नहीं दिया।

कमल ने फिर धीरे से कहा—मैं तुम्हें प्यार करता था, करता हूँ। तुम्हारा प्रेम फांसी के तख्ते पर मेरा कवच होगा, परन्तु उस प्रेम का बदला मैं तुमसे मांगता हूं, मेरे प्यार को लजाना मत·····।

शब्द बंद हो गये। आंखों से आंखें मिलीं। मुक्ता ने उन तेजस्वी नेत्रों में जीवन का मूर्तिमान और प्रज्वलित भविष्य देखा। वह रोकर भी हंस पड़ी। कमल ने तब आगे बढ़कर मां के चरण छुये, बोला—मां, मैंने तुम्हारे दूध को लजाया नहीं। उसमें बड़ी प्रबल शक्ति है। मैं तनिक भी नहीं झिझका। देश को तुम जैसी माताओं की जरूरत है।

मां के आंसुओं का प्रवाह एकदम रुक गया।

कमल ने फिर भाई के कन्धे को जोर से थपथपाया। कहा—मेरे बाद तेरी बारी है, नरेन।

भाई के आंसुओं में मुस्कान चमक उठी।

और फिर दरवाजा बन्द हो गया। उन्हें बाहर कर दिया गया। जो सम्बल था, वह हट गया। और वे ढाढे मार कर रो उठे·····।

सोचते सोचते अब भी सहसा उसका दिल उमड़ा। जी में उठा, चिल्ला कर रो उठे और पुकारे मेरे स्वामी, मेरे जीवनधन! तुम आज कहां हो ···· लेकिन उसकी आंखों में आंसू नहीं आये। छाती में ज्वार उठ कर रह गया। बाहर जूतों की खट-खट शुरू हुई। उसने आंख उठा कर देखा—उसकी साथिन लौट आई हैं। वह त्रस्त है। उसका सुन्दर मुख वेदना से कुम्हला गया है, परन्तु जब उसने मुक्ता को देखा- तो सब कुछ भूल कर चौंक पड़ी—मुक्ता अरे, तुम्हें क्या हुआ?

कुछ नहीं मुक्ता ने मुस्कराने की चेष्टा की।

फिर भी, तुम तो एकदम सफेद पड़ गई हो।

और तुम रजिया?

मैं ! मेरा जी करता है मुक्ता ! जमीन फट जाये और हम सब उसमें समा जावें।

मुक्ता उठकर बैठ गई—यह कायरता है, पर मानती हूँ, आज इससे बचने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता।

बेशक, कोई रास्ता नहीं, क्या होगा मुक्ता ?

आजादी मिलेगी।

यदि आजादी यही है, तो इससे घृणित वस्तु और क्या होगी। जिसके लिये हम आजादी चाहते हैं, उसी का खून हम बहा रहे हैं।

मुक्ता ने कहा—मनुष्य शाश्वत है। जिसका, उसका, यह, वह आदि मात्र संकेत शब्द हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य का खून कौन बहा सका है।

'हो सकता है, परन्तु मुक्ता ! यह वीभत्स रक्तपात मनुष्य के राक्षसपन का सबूत है और राक्षस आजादी का हक़दार नहीं हो सकता।

मुक्ता ने इस बार कुछ नहीं कहा, वह ऊपर की महराबदार छत को देखने लगी। उसी समय फिर खट-खट हुई। तीसरी लड़की भी लौट आई। वह भी उन्हीं की तरफ शुभ्र-स्वच्छ पोशाक पहने थी। उन्हीं की तरह उसका रंग फीका पड़ रहा था। उसने आते ही कहा—बीभत्स। एक दम बीभत्स।

रजिया ने पूछा—क्या हुआ ?

उन्होंने एक ही वर्ष के बालक को गोली मार दी।

क्षण भर के लिये वहां सन्नाटा छा गया। दोनों लड़कियों के दिल एक साथ करुणा और घृणा से भर उठे; केवल मुक्ता ने लेटे लेटे कहा—यह क्यों भूलती हो, दो वर्ष का बालक एक दिन बीस वर्ष का डाकू बन सकता था।

वे दोनों चिल्लाईं—मुक्ता.....।

ठीक कहती हूँ। नहीं तो इन हत्याओं का क्या महत्त्व है ?

मनुष्य अन्धा है।

मनुष्य नहीं, उसका स्वार्थ अंधा है।

मुक्ता बोली—यह शब्दों का मायाजाल है क्लारा। कुछ समझ में नहीं आता। देश पागल हो उठा है, वह आजादी चाहता है।

किसी भी मूल्य पर, किसी भी तरह·····।

आजादी।

हां आजादी। कहते हैं वह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।

क्लारा के मन में गहरा विद्रोह उमड़ उठा। वह मुक्ता से बहस करने को तैयार हो उठी, पर तभी उसने उसके बच्चे को देखा। उसके प्रवाह पर एक दम ब्रेक लग गया। मन में उठा आजादी के लिये इसके पति ने हंसते-हंसते फांसी का फंदा गले में डाला था। यह आजादी की चोट पहिचानती है। बस, उसका मन भर आया और वह उठकर अपने कमरे की ओर चली गई। रजिया वहीं बैठी रही और फिर धीरे-धीरे फुसफुसा उठी—कैसा अचरज है मुक्ता? सभी भले काम जुल्म की नींव पर खड़े हैं?

मुक्ता मुस्कराई। रजिया ने सत्य को पहिचान लिया था, परन्तु वह सत्य कितना कड़वा था कितना·····।

कि चौथी लड़की और लौटी। वह भी बेतरह घबरा रही थी। रजिया ने पूछा—क्या खबर है सरला?

लाशों वाला कमरा ओवर लोड हो चुका है। डाक्टर घबरा उठे हैं।

कितने होंगे·····?

सौ और उससे भी अधिक।

वे सब मर चुके हैं।

बिल्कुल·····।

सरला का कमरा दूर था। वह कह कर चली गई। मुक्ता उस समय तक फिर अपनी दुनियां में लौट गई थी। आजादी के प्रश्न पर उसे पति की बातें याद आने लगी थीं। वे छिपे हुए थे, पुलिस उनके पीछे थी और वह घर में चुपचाप घुटी-घुटी सुना करती थी; उनकी कहानियां। उन्होंने डाकखाने जलाये, तार काटे, ख़जाना लूटा। आखिर क्यों·····आजादी के लिये···आजादी। आखिर आजादी का इन कामों से क्या सम्बन्ध है?

और एक दिन यही बात मुक्ता ने कमल से पूछी थी। उस दिन वह घर के बरतन साफ कर रही थी। रात का समय था। अन्धेरी रात थी, सब सो चुके थे। तभी सहसा उसने कांप कर देखा, उसके सामने कमल खड़ा था। वह सिहर उठी—आप।

उसका दिल भय, हर्ष, रुदन से एक साथ भर उठा। कमल ने शान्त मन से कहा—हां, मैं हूं मुक्ता। डरो नहीं।

कहां थे आप ? क्या होगा ?

कमल मुस्कराया—कोई चिन्ता मत करो, जो होगा वह हम जानते हैं, पर तुमसे कहने आया हूं डरना मत।

मुक्ता सहसा जवाब न दे सकी। वह डरती थी पर स्वामी के सामने स्वीकार नहीं करना चाहती थी। कमल ने उसे देखा, वह समझ गया, बोला—मुक्ता ! मुन्ना कैसा है ?

वह बोली—ठीक है। देखोगे न, आओ।

नहीं, नहीं—उसने कहा—समय कम है, केवल तुम्हें देखने आया था।

मुक्ता का दिल चीत्कार कर उठा। उसकी आंखें भर आईं। उसने कहा—आपने यह सब क्यों किया ?

देश की आजादी के लिये।

लेकिन आजादी का इस-महानाश से क्या सम्बन्ध है ?

कमल हंसा, बोला—तुम्हारी बात में-बल है, पर जान लो रानी ! आजादी वही ले सकता है, जो शक्तिशाली है और यह महानाश हमारी शक्ति का प्रदर्शन है। मुक्ता की समझ में खाक नहीं आया। कमल लौट गया। फिर एक दिन वह पकड़ा गया। मुकदमा चला और फांसी की सजा मिली। देश के नेताओं ने दया की याचना की, परन्तु वह बच न सका। फांसी लगने के बाद कई माह तक वह अशान्त-भ्रान्त डोलती फिरी। वह अपने वीर पति की याद लेकर जीना चाहती थी। देश में कुछ लोग थे, जिनके दिल में दर्द था। उन्होंने उसके

परिवार की सहायता की, पर यह सब कब तक ? वह पढ़ी लिखी थी। कुछ और पढ़ कर किसी स्कूल में काम कर सकती थी, पर वह शान्त जीवन उसे न जाने क्यों अच्छा नहीं लगा। उसने एक दिन निश्चय किया, वह डाक्टर बनेगी।

और उसने मैडीकल कालेज में नाम लिखा लिया। धीरे धीरे दो वर्ष बीत गये; इसी बीच देश में अनेक परिवर्तन हुये। जो सुस्ती, जो उदासीनता छा गई थी, वह दूर हो गई। समुद्र पार से एक पुकार आई और जनता आजादी के लिये पागल हो उठी। तब के बाद कहीं भी, किसी भी समय रक्त खौल उठता, बन्दूकें चलने लगतीं, लाशों से सड़क पट जाती···। आज वह दो दिन से अपने नगर में यही कुछ देख रही थी। कालेज का अस्पताल घायलों से भर चुका था। डाक्टर परेशान थे। लड़कियां चीरफाड़ में मदद कर रही थीं। मुक्ता उनमें सबसे आगे थी और अभी अभी तनिक सुस्ताने को अस्पताल से लौटी थी। उसके छात्रवास के सभी विद्यार्थी, सभी नौकर जरूरत से ज्यादा काम में जुटे थे। वे सब दुखी थे। गोलियों का शब्द, घायलों की पुकार, कटी-फटी लाशों का ढेर, लाशों में बच्चे, बूढ़े, अपाहिज, हिन्दू मुसलमान सभी, सभी बेबस प्राणहीन एक दूसरे से सटे हुये, रक्त से रक्त मिलाये हुये·····।

कि रजिया बोल उठी—मुक्ता, तुम्हारा बच्चा कितना खूबसूरत है ?

मुक्ता सहसा चौंकी—खूबसूरत·····।

हां, कितनी शान्त से सो रहा है। बेखौफ, बेखबर।

मुक्ता मुस्कराई—और अभी एक गोली आकर इस बेखौफी और बेखबरी को सदा के लिये अमर कर सकती है।

रजिया कांपी—मुक्ता ! कैसी बात कहती हो तुम, तुम्हें हुआ क्या है ?

मुक्ता हंस पड़ी—आज आजादी का युद्ध जो छिड़ा है, रजिया। आजादी के सामने मनुष्य गौण है, सब कुछ गौण है। मेरा बच्चा

भी प्रतीक मात्र है। भूल गई हो, कितने मासूम बच्चों की लाशें हमारे मुर्दा घर में पड़ी हैं। वे सब इसी तरह बेखौफ और बेखबर सोते थे।

रजिया की आंखें सहसा नम हो गईं। उसके मुंह से शब्द नहीं निकला और इसी समय उन्होंने देखा—कई लड़कियां घबराई त्रस्त अस्पताल से लौट आई हैं। सुलताना का रास्ता उधर से ही था। उसका चेहरा फक था। उसके पैर कांप रहे थे। रजिया ने उसे पुकार लिया–सुलताना! क्या बात है बहिन?

सुलताना ठिठकी, चिनचिना कर बोली–बात क्या है? वे सब पागल हो रहे हैं। उन्होंने उसे भी मार डाला···।

किसे·····।

छोटे डाक्टर को। वह एक बच्चे की लाश उठाकर ला रहा था। खिड़की तोड़ कर गोली उसकी छाती में लगी। वह गिर गया और देखते-देखते मर गया। गोरे चलती गाड़ियों से बेतहाशा गोलियां चला रहे हैं। वहां आन्तक छा गया है। सब लोग भाग गये हैं। घायलों के चीत्कार से शून्य कांप रहा है·····।

सुलताना की आंखों से भय उमड़ा पड़ता था। वह कह रही थी–हम सब मर सकते हैं सब·····

तभी मुक्ता तीव्रता से उठी, बोली—मैं जाती हूं।

रजिया चौंकी—कहां?

वहीं जहां शैतान नाच रहा है, जहां आजादी की पुकार मची है।

नहीं नहीं–सुलताना ने करुणा से कहा—नहीं मुक्ता! वहां कोई नहीं जा सकता। वहां मौत है। छात्रावास के गेट बन्द हैं।

मुक्ता मुड़ी, मुस्कराई—पर मैं जा सकती हूं। गेट की मुझे चिन्ता नहीं है। मैं मौत को पहिचानती हूं।

और वह बढ़ चली।

रजिया ने भयातुर कम्पित चीख कर कहा—लौटो मुक्ता। तुम्हारा बच्चा—

मुक्ता ने दौड़ते-दौड़ते शीघ्रता से कहा—रजिया! बच्चा देश का है। बच्चा तुम्हारा है·····

और आगे के शब्द बाहर उठते शोर में मिल गये। रजिया और सुलताना भौंचक सी भयातुर द्रवित एक दूसरे को देखती रहीं, देखती ही रह गईं।

: ३ :

दीप जले ये घर-घर

अन्तू जब प्रदीप के पास पहुँचा, तो वह बहुत व्यस्त था। देखा—उसका छोटा सा घर प्रकाश से जगमगा रहा है, आँगन में पूर्णिमा है और कमरे में नवप्रभात। उसे लगा—छोटे-छोटे दीपकों का मन्द-मन्द मधुर प्रकाश हृदय में शीतलता भरने लगा है और धूप-दीप के कारण मस्तिष्क सुगन्धित हो चला है। परन्तु वह दो दिन से प्रदीप को पा नहीं सका था, इसी कारण उसे क्रोध आरहा था। उसे यह विडम्बना भी पसन्द नहीं थी, कहें, वह इन बातों से घृणा करता था—'छि! छि!'—वह कहता—इसी पाखण्ड ने देश का नाश किया है। नव भारत निर्माण के लिये एक नई सभ्यता, एक नई संस्कृति की आवश्यकता है, जिसमें ऐसी कोई बात नहीं होगी, जो मनुष्य की बुद्धि से परे हो।

लेकिन यहाँ आकर उसे लगा जैसे यह शान्ति और मनोरम वातावरण उस पर मोहनी डाल रहा है, जैसे यह मधुरिका उसके थके हुए मस्तिष्क को सहलाने लगी है। उसने अपने को सम्हाला—छिः! कैसे हैं ये भारतवासी! गुलाम होकर भी स्वतन्त्रता के त्योहार मनाते हैं, लकीर के फ़कीर! और फिर एकदम पुकारा—प्रदीप!

प्रदीप अन्दर से दौड़ा आया—अरे अन्तू। आओ बाहर क्यों खड़े हो?

आया तो हूँ—अन्तू बोला—तुम्हारी राह देखते दो दिन बीत गये, क्या जहन्नुम चले गये थे ?

प्रदीप हँस पड़ा—तो कहिये श्रीमान् जहन्नुम होकर आये हैं, परन्तु आप गलती पर थे, देखिये अब स्वर्ग में आये तो कितनी जल्दी मिलन हो गया।

अन्तू बरबस मुस्करा पड़ा—मालूम होता है जादू पूरा चढ़ा है। क्या कर रहे थे दो दिन से ?

'स्वर्ग सजा रहा था।'

'लज्जा नहीं आती बोलते !'

प्रदीप अब भी हँसता रहा—वह शायद जहन्नुम में रह गई है।

'प्रदीप !!'

'जी।'

'इस पाखण्ड को आप स्वर्ग कहते हैं !'

'बहुत क्रोध आ रहा है क्या अन्तू ?'

'क्रोध तो नहीं, पर तुम्हारे दुर्भाग्य पर रोना अवश्य आ रहा है !'

प्रदीप की मुस्कराहट गम्भीरता में पलट गई। उसने कहा—अन्तू ! तुम्हारी बात समझ रहा हूँ। मानता हूँ परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े हुए अभागे भारतीयों को यह त्योहार मनाना शोभा नहीं देता। उन्हें तो जीना भी शोभा नहीं देता, पर फिर भी वे जिये जा रहे हैं।

अब तक वे अन्दर कमरे में आकर बैठ चुके थे। प्रदीप ने दीवे की मन्द-मन्द होती हुई लौ को सींक से सरकाकर तेज कर दिया। प्रकाश गहरा हो उठा और साथ ही उन दोनों की गम्भीरता भी। बाहर से व्यक्तियों का शोर छन छन कर कमरे में आरहा था। आँगन में छोटे बच्चे किलकारियाँ मार रहे थे। प्रदीप ने क्षण भर के लिये बाहर झाँका। फिर वह बोला—अन्तू ! तुम्हें अचरज हो रहा है ?

अन्तू ने जवाब दिया—जी में आरहा है, तुम्हें मार कर आत्म-हत्या करलूं।

ओह—प्रदीप इतना ही कह सका।

'तुम्ही सोचो, तुम मेरे स्थान पर होते तो क्या करते ?'

'वही जो तुम कह रहे हो।'

'तो फिर···?'

'तो फिर बताऊँ, मैं क्यों इस त्योहार को मनाने के लिये पार्टी का काम छोड़ आया हूँ। क्यों मैंने तुम्हारी अवहेलना की। उस बात को अपने तक रखोगे न ? किसी से कहोगे तो नहीं।' प्रदीप ने यह बात इस प्रकार कही कि स्वर करुणार्द्र हो उठा। मुख पर एक गम्भीर याचना की रेखा खिंच गई। अन्तू के हृदय को इस स्वर ने छुआ। वह बेबस सा बोला—जो बात जानना चाहता हूँ, उसे कहोगे तो क्यों न सुनूँगा।

तो सुनो—प्रदीप अपने स्थान से कुछ आगे झुक आया। उसने धीरे धीरे कहना शुरू किया—सन् १९३० की बात है। मैं लगभग दस वर्ष का था। दुनियां को देखने और समझने की अपनी दृष्टि थी। अपने को न जाने क्या समझता था। होली, दिवाली के त्योहार आने पर मुझे इतनी प्रसन्नता होती, जितनी सम्भवतः भोगी को विश्व राज्य तथा योगी को विश्वात्मा के मिलने पर भी नहीं होती होगी। उस बार भी दिवाली आई, पर वह दिवाली क्या ऐसी वैसी थी। गान्धीजी ने देश को बलिदान के लिये पुकारा था। असंख्य जन-समूह चुम्बक की तरह उस पुकार पर खिचा चला गया था। मेरे चाचा कालेज छोड़कर नमक बनाने लगे। सरकार ने उन्हें भीतर भेज दिया। ठीक दिवाली के सात दिन पहिले पिता जी बन्दी बना लिये गये। स्वर्गीय बाबा की याद मुझे है। मजाल कि तनिक भी माथे पर सिकुड़न पड़ी हो। मैं जानता हूँ, उन्हें ये बातें अच्छी नहीं लगती थीं। वे चिढ़ जाते थे, परन्तु मेरे वकील पिताजी की बुद्धि पर उन्हें गर्व था। वे मानते थे धर्मवीर जो करेगा, वह गलत नहीं होगा, इसलिये जब उनके सामने पुलिस उनके दोनों बेटों को पकड़ कर लेगई, तो

वे रोये नहीं। हां, दादी चिल्ला चिल्ला कर रोई, सुबक सुबक कर रोई। उन्होंने सरकार को इस बुरी तरह कोसा कि सुनते तो तुम छि, छि, कर उठते। मां कुछ नहीं बोली थीं पर उनके आँसू नहीं थमते थे। उनका सुन्दर मुख एक ही रात में पीला पड़ गया था। उनका सुगठित बदन दो ही दिन में घुल घुल कर शिथिल हो गया, उन्हें चक्कर आने लगे, उन्होंने अन्न जल त्याग दिया। उनकी इस हठ से दादा को अपार दुःख होता था। वे समझते थे, पर माँ के आंसू उनकी दृढ़ता को पिघला देते, बेटे की याद हरी हो जाती। उसके पीछे उनका अपना सम्बल तो था नहीं। इसलिये जब वे मां के आंसू पोछने आते तब तब अपने आंसुओं की धारा में डूबते उतराते लौटते।

ऐसे ही वातावरण में वह १९३० की दीवाली आई। तब न जाने भारत के कितने घर अँधेरे में रहे होंगे ? कितने प्राणियों ने प्रकाश के स्थान पर अश्रु बिन्दुओं से लक्ष्मी मां का स्वागत किया होगा। पहिले दिन दादा ने दादी से पूछा—'कल क्या होगा ?'

दादी रो पड़ी।

'वर्ष वर्ष का त्योहार है, लक्ष्मी रूठ जायगी।'

दादी ने कहा—'दुकान पर ही लक्ष्मी पूजन कर लेना।'

'और बच्चे ?'

'उन्हें भी वहीं खिला देना।'

'लेकिन···।'

'लेकिन क्या ? मेरे दोनों बच्चे अँधेरी कोठरी में पड़े पड़े तड़प रहे होंगे और मैं यहां दीवे संजोऊँगी। वे सूखे टुकड़ों से पेट भरेंगे और मैं मिठाई खाऊँगी। नहीं, नहीं, अबकी दिवाली नहीं मनेगी।'

दादा लौट गये। अगले दिन घर में सन्नाटा रहा। हमें यह बात खटकी। हम सब भाई बहिन मिलकर माँ के पास गये। वे रो रही थीं। हमें उनसे डर लगता था यद्यपि वे हमें सदा प्यार करती थीं।

छोटा बच्चू सबसे आगे था, बोला—'भाभी ! रम्मू, कमला, शिब्बू, सबने नये नये खिलौने खरीदे हैं।'

सरला ने कहा—'मिठाई भी।'

अमला बोली—'मोमबत्ती, गुब्बारे, लालटैन बहुत चीज़ें लाये हैं, भाभी ! हम भी लावेंगे।'

बच्चू और सरला एक साथ बोले—'हां भाभी ! हम भी लेंगे। रोशनी करेंगे।'

मैं सबमें बड़ा था, इसलिये सबसे पीछे बोला। मुझे अपनी बुद्धिमानी प्रकट करनी थी। मैंने कहा—'भाभी ! गुब्बारे तो फिजूल हैं। हम तो मोमबत्ती लायेंगे और श्रीकृष्ण और गांधी महात्मा की तस्वीरें। दादा कहते थे, अपनी भाभी से पूछकर ले आना।'

मां ने हमें देखा, उनका चेहरा बेहद पीला था। उनकी आंखें भरी आ रही थीं। वे कई क्षण तक खोई-खोई बैठी रहीं, फिर बोलीं—'देखो मुन्ना ! तुम्हारे पिताजी आज घर नहीं हैं।'

छोटा बच्चू एक दम बोल उठा—'पिताजी दिल्ली गये हैं, हमारे लिए रेलगाड़ी लाने।'

हाँ हां—सरला बोली—बहुत सारे खिलौने लायेंगे।

'मिठाई भी'—दादा कहते थे।

अमला बोल उठी—'चाचा बहुत दिन से नहीं आये।'

मैं जानता था पिताजी और चाचा दिल्ली नहीं गये हैं लेकिन जेल की महत्ता मुझ पर प्रकट नहीं थी, इसीलिये मैं चुप रहा। मां मुझी से बोलीं। मुझे याद है उनकी आंखों में आंसू भर आये थे और वे बरबस मुस्कराने की चेष्टा कर रही थीं। उन्होंने कहा—'प्रदीप। तुम बड़े हो, समझदार हो। इन्हें अपने बाबा के पास ले जाओ। तुम्हारे चाचा नहीं हैं, पिता नहीं हैं। वे होते तो सब काम करते। दादा बूढ़े हैं, सब काम कैसे करेंगे।'

सरला बोली एक दम—'तुम जो हो भाभी! पारसाल तो तुम्हींने दीये जलाये थे।'

भाभी की आंखें और भी भर आईं—'मेरी तबियत खराब है बिट्टी, नहीं तो मैं जरूर जलाती।'

'बुखार हो रहा है, भाभी?'

'हां।'

'दादी को भी?'

'हां।'

'तो चलो बाबा के पास चलें।'

और फिर हम जल्दी जल्दी बाबा के पास जाने को उठे। मुझे अच्छी तरह याद है कि हमारे पीठ मोड़ते ही मां ने अपना सिर खाट की पट्टी पर पटक दिया था और सिसक सिसक कर रो उठी थीं... कहते कहते प्रदीप के नेत्र भर आये! क्षण भर के लिये उससे बोला नहीं गया। अनन्त ने उसे देखा और कहा—'प्रदीप! क्षमा करना यह कायरता थी, मैं उस वियोग-रुदन को पाप समझता हूँ।'

सच अन्तू—प्रदीप बोला—यह पाप है पर किसी पाप को दूर करने के लिये समय और साधन की अपेक्षा होती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कोई बात हृदय को इतनी तीव्रता से छूती है कि क्षण भर में वातावरण पलट जाता है, उसी तरह जिस तरह सूर्य की प्रथम किरण पड़ते ही पृथ्वी की काया पलट जाती है। उस दिन हमारे घर भी यही हुआ।

अमला आठ वर्ष की थी, बोली—'भइया! अपने घर दीवे क्यों नहीं जलते?'

मैंने कहा—'अपने घर नहीं जला करते।'

'सब के क्यों जलते हैं?'

'उनके घर लक्ष्मी आवेगी।'

हमारे घर नहीं आवेगी ?···फिर कुछ सोच कर बोली—पिता जी और चाचाजी घर नहीं है, इसलिये नहीं आवेगी भइया ?'

मैं जवाब सोचूँ सोचूँ कि उसी क्षण एक चिरपरिचित स्वर सुन पड़ा—'सरला, अमला, ओ परदीप, कहां हो तुम ?'

वे हमारे पिता जी के मुन्शी अहमद्दीन थे। जवानी बिदा हो चुकी थी, पर उन्हें इसकी चिन्ता नहीं थी क्योंकि वह उन लोगों में से थे, जिनका मन उस दिन तक जवान रहता है, जिस दिन वह अन्तिम बार नेत्र मूंदता है। हम उन्हें ताऊ जी कहते थे। उस आवाज पर हम लट्टू थे, वह हमारा सहारा थी। उसे सुनते ही हम उछल पड़े और छोटे मुन्ने ने तो एक दम रोना शुरू कर दिया। मुन्शी जी ने सब कुछ देखा,मुन्ने को गोदी में उठा लिया और बोले—'परदीप ! क्या है यह सब ? अँधेरा क्यों है ?'

मैंने कहा—'ताऊ जी ! अबकी दिवाली नहीं मनी।'

'क्योंरे !'

सरला बोल उठी—'दादी ने मना कर दिया, ताऊ जी।'

'मना कर दिया ! आखिर हुआ क्या ?'

किसी आशंका से मुन्शी जी घबरा गये ! जल्दी जल्दी अन्दर जाकर उन्होंने पुकारा—'चाची !'

दादी मन मारे दालान में बैठी आकाश के तारे गिन रही थी। आंखें गीली थीं। आवाज सुनकर संभली—'आओ मुन्शी जी।'

'आया तो हूँ, पर चाची बात क्या हुई, अँधेरा कैसा है ?'

दादी बोली नहीं, आंखों पर आंचल रख लिया।

हम पीछे पीछे आये थे। सरला बोली—'ताऊ जी !' 'चाचा और पिताजी घर नहीं आये, इसलिये अब की हमारे घर लक्ष्मी माता नहीं आवेंगी।

अमला ने कहा—'ताऊ जी ! पिताजी गुब्बारे, फुलझड़ी लेने गये थे, पर आये नहीं।'

गोद में मन्नू मचल उठा—'शिब्बू जैसा खिलौना लूंगा।'

मुन्शी जी ने परस्थिति को समझा। उनका लम्बा चेहरा और भी खिंच गया। मुझे विश्वास है आज उस दृश्य को देखूँ, तो कांप उठूँ। उन्होंने दादी से इतना ही कहा—'लाला जी कहां हैं ?'

'दूकान से लौटे नहीं। कुछ काम था क्या ?'

'था तो नहीं, पर अब होगया है।'

दादी अचकचाई—'क्या···?'

'कुछ नहीं सिर्फ इतना ही पूछना है कि बाबू जी और भइया ने कौनसा गुनाह किया था, जिसकी वजह से उनके माँ बाप को आज मुँह छिपाना पड़ रहा है, जिसकी वजह से उनके बच्चे दूसरों की चीजों पर नीयत डालते फिर रहे हैं ?'

दादी एक दम सकपका गई, बोल नहीं निकला। मुन्शी जी और भी तेजी से बोलने लगे, वे क्रोध से उफन रहे थे। उन्होंने कहा—'चाची ! वे मेरे भाई होते तो सच कहता हूँ आज के दिन घर लुटा देता, वह रोशनी करता कि सारे शहर की रोशनी फीकी पड़ जाती, जैसे सूरज के सामने जुगनू की चमक। आज से बढ़कर भी कोई दिन है ? आज राम-रावण को जीत कर घर लौटे थे, आज तुम्हारे बच्चे आजादी जीतने गये हैं। क्या तुम नहीं चाहतीं, वे राम की तरह जीत कर लौटें ? आज तो तुम्हें खुशी से पागल हो जाना चाहिये। आज तमाम दुनियां की निगाहें तुम्हारे बच्चों पर हैं। दुश्मन भी कहते होंगे, धन्न हैं वे मायें, जिन्होंने ऐसे लाल जाये और तुमहो···तुम···।'

आगे मुन्शीजी से बोला नहीं गया। नथुने फड़कने लगे, आंखें सुर्ख हो आईं। मुन्ने को गोदी से उतार दिया और लगे झोले से निकाल निकाल कर चीजें फेंकने। उनमें मोमबत्तियां, फुलझड़ियां, गुब्बारे, कागज की

लालटेन, गुलदस्ते और न जाने क्या क्या था। हम सब सकबकाये घबराये मुन्शी जी को देख रहे थे। मुन्ना जोर से चीख उठा था, अब उन चीजों को देखा, तो किलकारियां मारने लगा। दादी की आंखों से पानी बरसने लगा। उन्होंने कहा—नहीं मुन्शी जी! यह बात नहीं है, लेकिन बहू का ख्याल था वे दोनों अंधेरे में पड़े होंगे। लोहे के तसले में मिट्टी भरे टुकड़े उन्हें खाने को मिले होंगे और हम यहां रंगरलियां मनायें···।

बीच में बात काट कर मुन्शी जी बोल उठे, हमें किलकारियां मारते देख उनके चेहरे की नसें कुछ ढीली अवश्य पड़ गई थीं, उन्होंने कहा—बेशक, चाची! हमें रंगरलियां मनानी चाहिये। हमारे भाई मुल्क को आजाद कराने गये हैं और रही उनकी बात सो आजादी के दीवानों को मुसीबतें ही नसीब होती हैं। जानती हो कितना दुख पाकर मां बच्चे को दुनियां में लाती है। इसलिये आज दिवाली और भी शान से मनाने की जरूरत थी। रूहों में कशिश होती है, चाची! सोचो अगर तुम्हारी उदास रूहें जब तुम्हारे बच्चों की रूहों से मिलेंगी तो क्या उन्हें सुख होगा? तुम लोगों की समझ निराली है। ताज्जुब है, लालाजी को भी क्या हो गया। मैं उनसे अभी जाकर पूछता हूं। वे जाने के लिये मुड़े थे, कि ठिठक गये, गति पर ब्रेक लग गया। सामने पूजा का थाल लिये बाबा खड़े थे। मुन्शी जी ने एक बार उन्हें देखा और कहा—मैं आपके पास जा रहा था। बाबा बहुत गम्भीर हो रहे थे। आंखें गीली हो होकर सूख गई थीं। कहने लगे—सब सुन चुका हूं अहमद दीन! तुमने मेरी आखें खोल दीं। जरा ठहरो तुम्हारे देखते देखते मैं उसका प्रायश्चित्त किये देता हूं।

और उन्होंने आंगन आकर पुकारा—कहां हो बहू! प्रसन्न होकर रोशनी का प्रबन्ध करो। मुन्शीजी ठीक कहते हैं। लक्ष्मी माता आज अवश्य हमारे घर आवेंगी। आओ हंसते-हंसते उनका स्वागत करें।

× × ×

और फिर क्षण भर के लिये बाहर झिलमिल झिलमिल करते प्रकाश को देखते हुये प्रदीप ने कहा—अन्तू, उस बार जो शानदार दिवाली मनाई गई थी, उसे मैं कभी नहीं भूल सकूंगा। मैं उन लोगों की भावुकता को बिलकुल नहीं मानता, पर मुन्शी अहमद दीन की भावना स्पर्धा की वस्तु है। उसी मधुर स्मृति में माँ यह त्योहार सदा आनबान के साथ मनाती हैं, विशेषकर जब पिता जी जेल में होते हैं। तुम जानते ही हो, वे अगस्त १९४२ से बन्दीघर में हैं।'

अन्तू ने कहानी सुनली, सुनकर इतना ही कहा—प्रदीप! मुझे लगता है, मुन्शी जी की भावना वास्तव में स्पर्धा के योग्य है।

प्रदीप विजय गर्व से मुस्करा उठा, बोला—तो आओ अन्तू मिल कर गायें 'दीप जले ये घर-घर!'

: ४ :

वे दोनों

उस दिन एक छोटे से जंकशन पर अचानक मेरी उससे भेंट हो गई। मैं ट्रेन बदलने के लिये रुका था और उसे आगे जाना था। रास्ते दो हो कर भी हमें काफ़ी देर साथ रहने का अवसर था। पहले उसी की दृष्टि मुझ पर पड़ी। वह चिल्लाया—हलो हरि !! हरि !!! किधर, कहां··· ?

मैं मुड़ा कि मेरे दोनों कन्धों को झकझोरता हुआ वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ। वह मेरा बचपन का प्यारा साथी था। मैं हर्ष से चीख उठा—रमन...रमन...तुम... ?

हां हरि, मैं—वह मुस्कराया। उसके नेत्रों में तरल स्नेह था, उसका रोम-रोम पुलकित था।

मेरी आंखें भर आईं। मैंने धीरे से कहा—कैसा आकस्मिक मिलन है और कितना अच्छा···?

उससे बोला नहीं गया। एक बेंच की ओर संकेत करता हुआ वह स्वयं उस पर बैठ गया मानो उमड़ते हुए भावों को दबाना चाहता हो। मैं भी उसके पास उससे सट कर बैठा। मौसम सरदी का था पर प्रेम और स्नेह क्या मौसम के मन्त्र की अपेक्षा करते हैं ? अपनी भावुकता को छिपाने के लिये वह हंसा और बोला—हां अब कहो। कहां हो ? क्या करते हो ?

मैंने कहा—क्या करता हूं ? अकबर ने अपने एक शेर में आज के

इन्सान के लिये चार काम गिनाये हैं। मैं एक कर चुका हूं, दूसरा कर रहा हूं। दो बाकी हैं।

यानी !—वह हंसा।

बी० ए० कर चुका। नौकरी कर रहा हूं। भला हो महायुद्ध का। युद्ध-विभाग में डेपुटेशन पर आया हूं। २५०) मासिक वेतन मिलता है। बस अब पेन्शन लेना और मरना बाकी है।

रमन उसी तरह हंसता रहा—मां कहां है ?

दिल्ली मेरे पास है।

विवाह किया ?

हां !

कितने बच्चे हैं ?

अभी चार हैं, दो लड़के, दो लड़कियां आगे और हो सकते हैं।

अब रमन खिलखिला पड़ा—तो यूं कहिये सृष्टिका क्रम ठीक-ठीक चल रहा है—और फिर सहसा गम्भीर-सा होकर बोला—क्यों हरि ! बचपन की बात याद है ?

मैंने कहा—सच कहता हूं रमन ! इतना व्यस्त जीवन है कि ऐसा लगता है सब कुछ आज ही शुरू हुआ है। हां, कभी-कभी जब एकान्त मिलता है, अपने बच्चों को खेलते और झगड़ते देखता हूं तो मुझे मेरा बचपन याद आ जाता है। सिनेमा में देखे किसी दृश्य की तरह क्षणिक आमोद, क्षणिक हर्ष, क्षणिक दर्द और फिर वही वास्तविकता का हृदय-हीन चक्कर.....पर रमन। तुमने नहीं बताया।

क्या बताऊं, हरि !—वह हंसा—कुछ बताने को हो तो ?

आखिर क्या करते हो ?

कोई निश्चित काम नहीं, लिखने का शौक है लिख लेता हूं। कभी स्कूल खोलकर बच्चे पढ़ाने लगता हूं और कभी हमारी सरकार की कृपा हो जाती है तो उसके आतिथ्य का मज़ा ले लेता हूं।

कांग्रेस में काम करते हो ?

हां।

विवाह किया ?

जरूरत ही नहीं पड़ी।

मां कहा है ?

मर गई।

मुझे बड़ा अजीब-सा लगा। मन भारी हुआ, घबराया-सा बोला—रमन। लगभग पन्द्रह वर्ष बाद हम एक-दूसरे के आमने-सामने बैठे हैं। इस बीच में दुनिया कहां-से-कहां पहुंच गई। आज की जिन्दगी मौत से भी भयानक है पर रमन ! तुमने अपना क्या कर डाला ? कैसे जीते हो दोस्त ? लेकिन रमन था खिलखिला पड़ा—कैसे जीता हूं। वैसे ही जैसे जीना पड़ता है। तुम्हें यह सब अजीब-सा लगता है पर मेरे लिये तो सब स्वाभाविक है जैसे तुम्हारे लिये सरकारी कागजों पर टिप्पणी लिखना और प्रणय-केलि के बाद बच्चे पैदा करना...।

और वह आगे कुछ कहे कि एक बालिका वहां आ गई। लगभग पांच वर्ष की होगी। सुन्दर, हंसमुख और स्वस्थ्य। बोली—चाचा जी ! अम्मा आपको बुलाती हैं।

रमन ने कहा— अभी चलते हैं, बिट्टी।

और मेरी ओर देखकर बोला—इसे पहिचान सकोगे ?

मैंने सोचना चाहा पर एकदम कुछ सूझा नहीं, कहा—इसे कैसे पहिचानूंगा, रमन। इधर आये युग बीत गया।

नहीं हरि। याद करो ! बचपन के सब साथियों के बारे में सोचो ! किसी से इसका चेहरा मिलता है ? किसी का भोलापन है इसकी आंखों में ? सोच लो, बिलकुल बाप को पड़ी है।

मेरी आंखें खुलीं। मस्तिष्क का चक्कर बड़ी तेजी से उल्टा घूमा, धीरे-धीरे सभी साथी सामने आये और चले गये। सबसे अन्त में एक भोला चेहरा आया और जाने लगा मैं झिझका—नारायण !

रमन के नेत्र चमक उठे। शाबास—तुम भूले नहीं हरि ! यह

नारायण की एक-मात्र बालिका है।

मैं विजय गर्व से मुस्करा उठा। बच्ची को अपनी ओर खींचकर मैंने कहा—कहां है वह पागल जो क्लास का मानिटर होकर भी सदा हमसे दबता रहता था।

रमन यथाशक्ति स्वर की स्वाभाविकता बनाये रखते हुए बोला—हां, वह ऐसा ही था! और अन्त तक ऐसा ही रहा।

मैं हठात चौंका—रहा, क्या मतलब?

मतलब यही कि उसने देश के अर्थात् हमारे लिये अपने प्राणों का मोह नहीं किया। हंसता-हंसता फांसी पर चढ़ गया।

फांसी पर चढ़ गया...मैंने बालिका को जोर से अपनी ओर खींचा मानो किसी ने मुझे ही फांसी का हुक्म सुनाया हो।

हां, हरि।—रमन कुछ गम्भीर कुछ द्रवित वाणी से बोला—गत वर्ष उसे अगस्त आन्दोलन में रेल की पटरी उखाड़ने के अपराध में फांसी दे दी गई। क्या तुमने यह अखबारों में नहीं पढ़ा.....? और फिर उसी क्षण व्यंग से मुस्कराकर कहा—तुम्हें क्या मतलब इन बातों से। तुम तो उनके हो।

मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। क्रोध, लज्जा और ग्लानि से मैं तिलमिला उठा। आंखों में आंसू भर आये। रमन ने मुझे देखा, मेरे आंसुओं को देखा जैसे हड़बड़ा उठा हो—अरे! मैं तो भूल गया। आओ हरि! नारायण की मां है, बहू है...

और फिर मुझे खींचता हुआ पीछे की ओर ले गया जहां छोटे से बेटिंग रूप में एक वृद्धा बेंच पर चादर लपेटे लेटी थी। उसीके पास बैठी एक युवती बाहर सड़क पर देख रही थी। रमन ने दूर से ही पुकार कर कहा—देखो तो अम्मा! यह कौन आया है?

कौन है रे—अम्मा उठती-उठती बोली। युवती ने गरदन घुमाकर मुझे देखा और झट घूंघट खींच लिया। अम्मा ने गौर से देखा। मैं

उन्हें प्रणाम करूं करूं कि बोल उठी—शुक्लजी के बेटे की सी होर आवे हैं। हरि है क्या ?

रमन हंसा—वही हजरत है अम्मा ! नारायण का लंगोटिया यार। बार-बार तुम्हारी मार खाकर भी रात-रात भर इन्हीं के घर तो हम सब पड़े रहा करते थे। शुक्ल जी की कहानियां और शुक्लानी चाची के गोल-गप्पे ! क्यों हरि...अरे, अरे। रोता है, पागल ! चुप कर। नारायण ने कोई ऐसा काम नहीं किया जिसके लिये किसी को रोना पड़े।

लेकिन मुझे न जाने क्या हुआ ? मैं नारायण की मां के पास बैठकर सुबक उठा। मां की आंखों से भी अविरल धारा बह चली। बहू ने एक बार फिर घूंघट उठाकर देखा। रमन ने फिर कहा—इस बार उसके स्वर में तीव्र आदेश ध्वनि थी—हरि ! खबरदार जो रोये वीरों की समाधि पर आंसुओं का नहीं, रक्त का अर्घ दिया जाता है। उस के लिये रोना उसके कार्य्य का तिरस्कार करना है।

मैंने आंसू पोंछ डाले। नारायण की अम्मा भी शान्त हो गई और पूछने लगी—क्यों भइया। शुक्ल जी कहां हैं अब ?

मैंने कहा—जहां एक दिन सब जाते हैं।

उन्हें दुख हुआ—मर गये। कब रे ? और मां कहां ?

मां दिल्ली है।

और तूने विवाह किया न ? क्या करता है ?

मैंने उसी तरह स्वाभाविक बनने की कोशिश करते हुये कहा—विवाह किया है, बच्चे हैं, नौकर हूं इत्यादि इत्यादि !

और कहकर पूछा—नारायण ने एक यही लड़की छोड़ी है ?

हां बेटा ! एक यही है।

तभी रमन बोल उठा—उसे इस एक की भी जरूरत नहीं थी। वह देश के लिये मरा है। मौत ने उसे अमर कर दिया है। जीवन सबको एक तल पर रखता है पर मौत महान आत्मा का निर्वाचन करती है।

बेशक रमन—मैंने कहा—जिसने दूसरे के लिये प्राण दिये हैं वही

जिया है। हमारा क्या है ? कुत्तों की तरह पेट भरतेहैं।

रमन जोर से हंसा—आत्मनिन्दा आत्मश्लाघा के समान पाप है, हरि ! यह विशुद्ध कायरता है।

मैंने कहा—और क्या तुम हमें बहादुर समझते हो ?

उसी अल्हड़ता से वह बोला—तुम मनुष्य हो, हरि। और मनुष्य कब क्या कर सकेगा यह कौन जानता है। सच कहना क्या कभी तुमने सपने में भी सोचा था कि वह भोला और दब्बू नारायण किसी दिन हंसते-हंसते फांसी को गले लगा लेगा.....।

मुझे लगा कि उसका स्वर स्वाभाविक अल्हड़ता और दृढ़ता को छोड़कर कुछ उत्तेजित होने लगा है। मुझे उसकी यह मुद्रा बड़ी सुन्दर लग रही थी। वह कुछ बोलने के मूड में था; लेखक था न ? पर अचानक उसी वक्त दो-तीन मनुष्य वहां आ धमके। उन्होंने फौजी वर्दी पहनी थी और वे आते ही अकड़ कर बोले—आप यह कमरा खाली कर दीजिये।

रमन ने अचरज से उन्हें देखा और नम्रता से कहा—क्यों भइया, क्या बात है ?

यहां हम बैठेंगे।

लेकिन यहां तो हम बैठे है।

उनमें से एक अकड़ पड़ा—यह तो हम देख रहे हैं आप बैठे हैं पर अब हट जाइये।

रमन कुछ कहे कि मैं उठकर उसके सामने आखड़ा हुआ—और अगर न हटें तो...।

तो हम हटा देंगे—वह बोला।

अच्छी बात है हटा दीजिये तब—मैंने उसी तरह कहा !

कि रमन जोर से हंस पड़ा और तभी बाहर से दो पुरुष और दो स्त्रियां वहां आगईं। वे सब जाट जान पड़ते थे। उनका पहनावा भला था। पुरुष दोनो वृद्ध थे। उन्होंने कुरता-धोती पहना था। हाथों में

बेतें थीं और पैरों में मुंडे जूते। स्त्रियों में एक वृद्धा थी। सादा घाघरा और ओढ़नी पहिने थी पर दूसरी स्त्री की, जो युवती थी, पोशाक चटकदार थी। उसके हाथ-पैर जेवरों से भरे थे। उसने गहरा घूंघट निकाला था। उनको देखकर रमन ने पूछा—कहां जा रहे हैं आप ?

दिल्ली।

किसी मेले में।

एक वृद्ध जो तब तक कुरसी पर बैठ चुके थे बोले—हां भइया, मेला ही है। बेटे की मौत का मेला है।

हम सब चौंके—मौत। यहां भी मौत की चर्चा है। रमन ने फिर पूछा—बात क्या है, चौधरी जी।

भइया। बात क्या होती बड़े लाट ने बुलाया है। लड़का था, लड़ाई में मारा गया पर था बहादुर। मरा भी तो जीत का रास्ता खोलकर मरा। राजा ने खुश होकर विक्टोरिया क्रास का तमगा दिया है।

विक्टोरिया क्रास। किसे ! क्या नाम था उसका ?

भरत सिंह।

भरत सिंह। पांचवीं जाट रेजिमैन्ट का सिपाही जिसने मध्य बर्मा में लगातार हमला करके जापान को पीछे हटाया था, जिसने दुश्मन की मशीनगनों से आती हुई गोलियों के बीच, बिना आदेश पाये ही उस चौकी पर हमला किया था जो हार-जीत का पासा पलटने वाली थी।

हां, हां, वही—अचरज से उस वृद्ध के मुंह से निकला और वे सब स्त्री-पुरुष रमन को देखने लगे—तुम तो सब-कुछ जानते हो, भइया।

रमन उसी शान्ति से बोला—हां मैंने अखबार में पढ़ा था। उसने प्राण दे दिये पर उस चौकी को दुश्मन से छीन लिया। वह सचमुच बहादुर था। आप शायद उसके पिता हैं।

जी। ये उसके चाचा हैं, वह मां है, और उधर उसकी घरवाली है। ये सब भाई और साथी हैं।

कोई बच्चा है।

हां ! एक लड़का है गोद में।

ठीक है वह भी बाप जैसा बहादुर बने यही हम चाहते हैं। अच्छा !" आप लोग बैठिये। हम बाहर चले जावेंगे।

और यह कह कर उसने अम्मा जी से कहा—चलो अम्मा !

मैंने अचरज से यह सब देखा। मुझे बुरा लगा। मैं देख रहा था वे लोग भी घबरा रहे थे। मैंने तीव्रता से कहा—नहीं रमन ! हम यहां पहले बैठे थे। हम नहीं जावेंगे। जिन्हें तुम बहादुर कहते हो वे दूसरों के टुकड़ों पर जीनेवाले भाड़े के टट्टू हैं.....मैं आगे और भी कुछ कहता पर रमन का स्वर कांप उठा—हरी ! किसी का अपमान मत करो। मैं मानता हूं वह नहीं जानता था वह किसके लिये अपने प्राण दे रहा है पर वह प्राण देना तो जानता था। और जिन्हें प्राणों का मोह नहीं है वे वीर पुरुष हैं। वीर पुरुष सदा आदर के पात्र हैं।

और उसने मुड़कर फिर कहा—चलो अम्मा ! इन्हें बैठने दो। इन्हें रात भर यहीं रहना है। हमारी गाड़ी तो लगभग २-३ घण्टे में आ जावेगी।

वे उठीं कि वृद्ध बोल उठे—नहीं, नहीं। आप बैठिए ! किसने कहा आपसे जाने को।

मैं एकदम तेजी से बोल उठा—तुम्हारे इन साथियों ने जो फौज की भाड़े की वर्दी पहिनकर अपने को अफलातून का बाप समझते हैं। वे नहीं जानते जिन्हें वे दुरदुराना चाहते हैं वे सदा मौत के साथ खेलते हैं। यह बात दूसरी है कि तुम्हारी तरह उन्हें सिर कटाने का पारितोषिक नहीं मिलता बल्कि कुछ अन्धे लोग उन्हें घृणित समझते हैं और बैठने का स्थान देने से भी इन्कार करते हैं।

मैं क्रोध से उमड़ा पड़ता था और रमन को मेरी इस अवस्था से बहुत वेदना पहुंच रही थी परन्तु वे वृद्ध तिलमिला उठे। हाथ जोड़कर बोले—आप गुस्सा न करिये। हम आपको जानते नहीं अगर इन बच्चों

ने कुछ कहा हो तो माफ कर दीजिये ।

दूसरे वृद्ध ने जो अब तक चुप थे कहा—आप कांग्रेस में काम करते हैं ?

मैंने कहा—मैं तो नहीं करता पर ये करते हैं ।

ये इनकी मां हैं ।

जी नहीं, इनकी नहीं ये अब सबकी मां हैं । इनका लड़का हम सब के लिये ही फांसी पर चढ़ा था ।

फांसी.....! हठात वे सब चौंक उठे ।

जी हां ! अगस्त सन् १९४२ की आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने के अपराध में इनके नवयुवक पुत्र को उसी सरकार ने जो तुम्हारे स्वर्गीय पुत्र को विक्टोरिया क्रास देने जा रही है, फांसी पर लटका दिया.....

रमन से अब नहीं रहा गया । वह बड़ी तेजी से हंसा, बोला—अरे ! यह सब तो चलता ही रहता है, पर हरि, बहादुर आदमी इस तरह भावों के गुलाम नहीं हुआ करते जिस तरह तुम । आओ हम बाहर चलें तुम्हारी गाड़ी भी आने वाली है । आओ अम्मा, भाभी, पुष्पा बिट्टी आओ ।—और चौधरी की तरफ मुड़कर बोला—ख्याल न करना चौधरी साहब ! दुनियां में सब इसी तरह चलता है । एक का पुण्य दूसरे का पाप है पर आपस में यह कड़ुवाहट नहीं होनी चाहिये ।

और उसने बाहर जाने को किवाड़ खोले । तभी वे दोनों जो युवक थे आगे बढ़ आये और बड़ी नम्रता से बोले—आप हमारी खता माफ करदें । हम शर्मिंदा हैं । आप सचमुच बहादुर लोग हैं । हम आपकी इज्जत करते हैं ।

दूसरे ने मुस्करा कर कहा—और जब आप लोग राज संभालेंगे तब क्या हम जरूरत पड़ने पर देश के लिये मरने से पीछे हटेंगे । आप हमारी बात मान लीजिये । जब तक गाड़ी नहीं आती अम्मा जी को

यहीं बैठने दीजिये, बाहर जाड़ा है।

रमन उसी तरह हंसा पर उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ी क्योंकि दोनों पुत्रहीन वृद्धायें तब तक चुपचाप एक दूसरे से बातें करने लगीं थीं और विक्टोरिया क्रास विजेता सिपाही की पत्नी ने पुष्पा को अपनी गोद में बिठा लिया था। नारायण की पत्नी बार-बार घूंघट उठाकर उसे देख रही थी।

हम बाहर जाने को उठे पर मैं मान लूं मैं अब भी रमन की बात नहीं समझ पा रहा था। गुलामी की जड़ उखाड़ने के लिये प्राण देने वाला वीर और अपने मालिक के टुकड़ों के लिये जान देने वाला गुलाम दोनों महान कैसे हैं ?

शायद इसलिये कि उन दोनों को प्राणों का मोह नहीं था और जिन्हें प्राणों का मोह नहीं होता वे महान हैं।

शायद.....!

: ५ :

गविता

कुसुम ने आते ही अपनी स्वाभाविक अल्हड़ता से कमरे के सब दरवाजे और खिड़कियां खोलदीं। फिर बोली हंस कर—जो प्रकृति की देन का तिरस्कार करते हैं उनपर परमात्मा का कोप होता है, राधा! देखती नहीं, ढेर सारा प्रकाश कमरे में बिखर पड़ा है। यही प्रकाश तो जीवन है, लेकिन तू है कि अन्धेरे को छाती से चिपटाये पड़ी रहती है।

उसकी बात सच थी। दरवाजे खुलते ही कमरा धवल प्रकाश से भर उठा। हल्की-हल्की बयार बहने लगी। बाहर के अनेक स्वरों ने वहां की शान्ति को भंग कर दिया और सामने की दीवार पर पड़ती हुई सुनहरी धूप के प्रकाश से प्रतिबिम्बित हो कर राधा का मुरझाया हुआ मुखड़ा चमक उठा। वह मुस्कराने लगी।

देख कर कुसुम फिर हंसी, व्यंग से—रंग कुन्दन की तरह दमक रहा है और लोग कहते हैं बीमार है! ऐसी भी क्या बीमारी जो रूप को निखार दे।

राधा ने जवाब दिया हंसकर—अगर बीमारी रूप निखार देती है तो क्यों नहीं इसे मोल ले लेती? शायद तेरा काला रंग गोरा होजाए।

कुसुम अब राधा की चारपाई पर आ बैठी थी। बोली—मेरा रंग बुरा लगता है, क्यों?

यह तू अपने 'उनसे' पूछ।

किनसे ?

उन्हीं से।

उन्हीं से, उन्हीं से, आखिर 'उन्हीं' है कौन बला ?

और जवाब की चिन्ता किये बिना कुसुम धीरे-धीरे राधा के ऊपर झुकती गई कि सिर छाती पर टिका दिया। बोली—सच कहना राधा ! तुझे भी अपने 'उन्हीं' की याद आती है ?

याद—राधा ने धीरे से कहा।

हां याद। —कुसुम फुसफुसाई।

आती है।

सच ?

सच।

तो फिर.....। सहसा कुसुम ने देखा—राधा के नेत्र सजल हुए, छाती उफनी—राधा, राधा– वह पुकार उठी।

राधा नहीं बोली !

कुसुम विह्वल होकर उससे लिपट गई। कहने लगी दुःख भरे स्वर में—राधा ! सच मैं बहुत बुरी हूं। तू बीमार है, तेरे प्रियतम जेल में हैं, तेरा बच्चा तुझे छोड़ कर चला गया है; और मैं हूं कि सदा तेरे सामने हंसती रहती हूं। तुझे दर्द होता है, मैं मुस्कराती हूं। सच मैं बहुत बुरी हूं, तू मुझे माफ करदे.....।—कहते-कहते कुसुम का कण्ठ रुंधने लगा। राधा से भी बोला नहीं गया। वह चुपचाप कुसुम की पीठ पर अपना हाथ रखे पड़ी रही। दिन डूब चला, धरती को सन्तप्त कर प्रकाश किरणों के साथ चला गया और इसी वियोगआछन्न वाता-वरण में दोनों सखियां एक दूसरे से चिपटी, बिना बोले, बिना हिले, बहुत देर तक पड़ी रहीं कि बाहर किसी ने पुकारा—भाभी !

दोनों चौंक कर उठीं। कुसुम शीघ्रता से बोली—आती हूं।

फिर दो क्षण बीत गए। कुसुम बाहर गई और एक युवक के साथ लौट आई। उसने खद्दर का कुरता-पाजामा पहना था। पैरों में चप्पलें

थीं और आंखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा। रंग सांवला था पर चेहरे पर चमक थी, दृढ़ता थी। उसका नाम प्रकाश था। सीधा आकर कुरसी पर बैठ गया और बोला—भाभी! तुम्हारे पिताजी का पत्र आया है।

राधा लेटे-लेटे बोली—मैं जानती हूं! उन्होंने लिखा होगा कि मैं आरहा हूं। राधा से कहना अब उसे मेरे साथ चलना होगा।.....

सुनकर सब हंस पड़े। कुसुम बोली—अगर ऐसा लिखा है तो बुरा क्या है? स्वास्थ्य के लिए तुम्हें जाना ही चाहिए।

प्रकाश ने कहा—बेशक भाभी! तुम्हें जाना ही चाहिए।

चाहिए तो.....। राधा बोली।

तो क्या! बस चलो! मैं कल उधर जारहा हूं। वे आएंगे, व्यर्थ कष्ट होगा।

हां, हां, जाओ राधा—कुसुम ने आग्रह पूर्वक कहा और फिर उसकी खाट पर बैठ गई। बालों में उंगली फेरते-फेरते बोली—मैं कहती हूं तुझे जाना ही चाहिए।

क्यों.....?

क्योंकि जाने से तेरा जी ठीक होगा, बीमारी दूर होगी और बीमारी दूर होने से सब कुछ होगा।

सब कुछ क्या, भाभी?—प्रकाश बरबस पूछ बैठा।

कुसुम फिर स्वाभाविक अल्हड़ता से मुस्कराई बोली—सब-कुछ के माने सब-कुछ।

सच भाभी! मैं तो जानता नहीं—। और वे सब फिर हंस पड़े। ऐसा लगता था वे तीनों अपने-अपने भावों को छिपाने के लिए बार-बार हंसना चाहते हों। हंसना एकदम बन्द कर प्रकाश ने कहा—तो तय हुआ कल तुम चलोगी?

हां।

बहुत सुन्दर, भाभी ! बहुत सुन्दर । और हां, ये पन्द्रह रुपये लाया हूं ।

राधा ने तनिक अचरज से कहा—कैसे रुपये ?

पण्डितजी ने दिये हैं । वे राजबन्दियों के परिवारों की देखभाल करते हैं । उन्होंने पहले भी कई बार..... ।

मैं जानती हूं—राधा बोली—उनसे हाथ जोड़ कर कहना—वे बड़े पुण्य का काम करते हैं, परन्तु मुझे रुपयों की जरूरत नहीं है । होगी तो कहला भेजूंगी ।

लेकिन भाभी !—प्रकाश ने कहना चाहा ।

सच भय्या ! जरूरत होगी तो क्या आत्महत्या करूंगी ? मागूंगी ही, यह बात दूसरी है, किससे मागूंगी । अपने से या किसी..... । और फिर सहसा कुसुम की ओर दिखाकर बोली—तू अपनी इस भाभी को नहीं जानता । बड़ी राक्षसी है यह । एक पैसा भी किसी से मांगते देख लिया तो खा जायगी । इसीलिए पैसा तू लौटा देना, और हां ! सूत रखा है । उसे आश्रम दे आना, मैं अब क्या जाऊंगी ।

और फिर क्षण-भर के लिये कमरे में सन्नाटा-सा छा गया । कोई कुछ न बोला, जैसे सब के पास सोचने को था, सोचने लगे । लेकिन इस प्रकार चुप होना क्या ठीक है इसीलिए प्रकाश बोला—तो मैं अब जाऊं भाभी । और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह शीघ्रता से वहां से चला गया । उसके जाने से जो खटखट हुई उसी से चौंककर कुसुम बोली—राधा ! अंधेरा हो गया, दिया जला दूं ?

राधा भी चौंकी—हां ! लालटेन उधर रखी है । जला लाओ । एक काम है तुम से ।

मुझ से सच !

जी हां ।

तो राधा ! तू बड़ी अच्छी है । मैं आशीर्वाद देती हूं कि तू अचल.....।

राधा एकदम हंस पड़ी और बोली—बस ! गुरुआनीजी ! मुझे सबेरे चले जाना है । मेरे पास बैठो ।

बैठकर कुसुम ने कहा—जी !

लो यह चिट्ठी पढ़ो । राधा ने तकिये के नीचे से एक लिफाफा निकाला और कुसुम को थमा दिया ।

किसको लिखी है ?

उन्हीं को ।

उन्हीं को—कुसुम मुस्कराई—यह 'उन्हीं' कौन हैं ?

जैसे जानती ही नहीं ।

कुसुम ने अचरज से भर कर कहा—तेरे उन्हीं को मैं जानती हूं ? ना, बाबा ! मैं किसी के 'उन्हीं' को नहीं जानती । मेरे अपने ही मुझसे नहीं सम्भलते.....।

राधा मुस्करा रही थी—तेरी ये आदतें ही तो हैं जिन पर तेरे वे रीझ गये हैं, वरना यह मुंह और मसूर की दाल ।

कुसुम और भी खिलखिला पड़ी—तो क्या सच राधा ! तेरे वे भी मुझपर रीझ सकते हैं । नहीं, नहीं पगली ! तेरे वे तो दीवाने हैं । सर से कफन बांधे फिरते हैं । ऐसों से मोहब्बत करने के लिए बहुत बड़ा दिल चाहिए । वह दिल मेरे पास तो क्या तेरे पास भी नहीं है ।

सहसा कुसुम की खिलखिलाहट गहरी करुणा में बदल गई । वह कहती रही—सच राधा, तेरे पास भी नहीं है । अगर होता तो क्या तू इस प्रकार अन्दर-ही-अन्दर घुलती रहती ?

राधा ने आंखें पोंछलीं । बोली—चिट्ठी पढ़ ले ।

कुसुम चौंकी—ओ, मैं भूल गई ।

और फिर धीरे-धीरे चिट्ठी पढ़ती चली गई । राधा ने कांपते हाथों से बहुत संवारकर लिखा था—

साथी मेरे,

तुम्हारी पिछली चिट्ठी मिली थी । पढ़कर छाती गर्व से उभर आई ।

सोचती हूं आज कितनी सौभाग्यवती नारियां मुझसे ईर्ष्या करती होंगी ? कितनी माताएं सोचती होंगी कि उनकी गोदी में ऐसे लाल खेलते होते ! कितनी बहनें तुम्हारे जैसे भाई पाने को आतुर होंगी।

जन्म से सुनती आई हूं, ईश्वर है, देवता हैं। वे लोक हैं, जहां से हमारे पुरखा हमें देखते हैं। स्वयं भारतमाता कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है, उसका पार्थिव रूप भी है। अनेक बार इन बातों पर शंका हुई है। पुराणों की गप्पें कहकर इनका तिरस्कार किया है परन्तु अब मुझे इन सबके दर्शन दिन-रात होते रहते हैं। प्रत्येक प्राणी के अन्तर में देवताओं और राक्षसों का निवास है। निरन्तर उनका युद्ध चलता रहता है, और यह युद्ध ही जीवन की संज्ञा बनाता है।

अन्तर के उस संघर्ष को जिसने परखा है वह व्यक्ति जीवन में धोखा नहीं खा सकता। वस्तुतः वह किसी भी कार्य को धोखे की संज्ञा देता ही नहीं। इसीलिए मुझे जब भी शोक आकर दबाना चाहता है, तो उसे शोक करके नहीं लेती। वह तुम्हारे पास से आता है। उसे मैं अपना प्रिय सखा समझती हूं। इतना समझते ही उसके कांटे झड़ जाते हैं। और वियोग ! उसका जन्म प्रेम से होता है। वह सदा अपने जन्म-दाता के प्रति कृतज्ञ है। सच तो यह है, उसके कारण ही प्रेम की परख होती है। आंखें खोलकर देखो तो रोज ही यह सचाई हम पर प्रकट है। उषा सूर्य की प्रियतमा है पर किसी भी युग में उन्हें किसी ने मिलते नहीं देखा। वे चिर विरही हैं लेकिन इसी कारण वे कभी एक दूसरे से रुष्ट नहीं हुए। मेरे जन्म-मरण के साथी ! जब भी हम अपने इस कथित वियोग को कष्ट की संज्ञा देंगे तभी हमारा प्रेम नष्ट हो जायगा। दुनिया की दृष्टि में केवल हम दोनों ही पतित नहीं होंगे, हमारा धर्म, हमारी जाति, हमारा देश सभी कलंकित हो जावेंगे। धरती माता अपनी मिट्टी की कलुषता पर सिर झुका लेगी। लेकिन मैंने यह सब क्यों लिखा ? शायद मेरे अन्तर का राक्षस कभी-कभी जाग पड़ता है, शायद कभी-कभीमुझे अपने पर अविश्वास होता है। अविश्वास पाप है। पर इस

पाप को जब मैं क्रोध के स्थान पर सहानुभूति से लेती हूं तो सच मानना मुझे जरा भी लज्जा नहीं आती; बल्कि बल मिलता है कि आगे दृढ़ रह सकूं।

सच तो यह है अब तुम मुझ से दूर नहीं हो। सदा हृदय में बसे रहते हो। जब चाहती हूं मन की दो बातें कह-सुन लेती हूं। इसीलिए वियोग कभी अखरता नहीं.....।यहां आकर कुसुम ने एकदम पढ़ना बन्द कर दिया, बोली–राधा ! यह दार्शनिकता एकदम अस्वाभाविक है

अस्वाभाविक है ?

हां।

लेकिन कुसुम—राधा बोली—कभी-कभी अस्वाभाविक होना भी स्वाभाविक होता है।

कुसुम इस बार स्तम्भित, चकित राधा को देखती रह गई, लेकिन उसका मन अब भी इस ज्ञान को स्वीकार नहीं कर रहा था। उसने झिझकते-झिझकते कहा—राधा ! तुम्हें अपना जानकर मुझे सदा गर्व रहा है, पर प्यारी सखी ! मैं नारी हूं और नारी जब अपने नारीत्व को भूल कर ज्ञान की चर्चा करती है तो वह अपने को धोखा देती है, धोखा देना पाप है।

राधा बोली—तुम्हारी बात से मैं इन्कार नहीं करती परन्तु क्या तुम चाहती हो मैं उन्हें लिखूं—मेरे प्रियतम ! मेरे जीवनाधार ! तुम्हारे बिना मैं तड़प रही हूं। आंखों में आंसू, छाती में उच्छ्वास, हृदय में टीस लिए मैं सदा तुम्हारी बाट देखा करती हूं। तुम आओ, मुझे गले से लगालो, नहीं तो, नहीं तो.....।

राधा ! राधा—कुसुम व्यग्र होकर बोली।

राधा का बांध फूट पड़ा। आंसू तीव्र गति से उमड़ पड़े। सुबकते-सुबकते उसने कहा—कुसुम, मैं भी नारी हूं। मेरे भी दिल है और दिल में दर्द है। तीन वर्ष से वे मुझ से अलग हैं। उनकी एक-मात्र निशानी भी जाती रही पर...तू ही बता क्या ये सब बातें दोहरा-

दोहरा कर उनके सम्बल को नष्ट कर दूं। उन्हें वह अवसर दूं कि वे अपने कार्य पर क्षण भर के लिए भी लज्जित हों..... ?

नहीं-नहीं।—कुसुम ने राधा को अपनी बांहों में भर लिया। उसके आंसूओं से भरे मुख पर अपना मुख रख कर कहा—बस राधा अब तुम शांत हो जाओ। मेरा मतलब यह नहीं था।

राधा को यह मिलन सुखकर लगा उसने लम्बी सांस खींच कर कहा—जिस बात से उन्हें शांति मिले, जिस बात से वह हंसते-हंसते फांसी की रस्सी को गले लगा सकें वही·····

कुसुम ने चौंक कर कहा—फांसी! ऐसी कुलच्छनी बात क्यों कहती है ?

राधा बोली—बात ठीक है। उन्हें फांसी होगी। बहुत दिनों की बात है। ऐसी ही रात थी, वह इसी तरह लेटे थे। भविष्य की बातें हो रही थीं। सहसा वे बोले—रानी, ज्योतिषियों ने हाथ देखकर मेरे भविष्य को बहुत शानदार बताया है। कहा है कि फांसी होगी।

फांसी···ई···ई···क्या कहते हो तुम ?

सच रानी! हाथ देखकर पण्डित ने कहा है—तुम क्रांतिकारी पार्टी के नेता बनोगे, तुम्हें फांसी मिलेगी।

मैं कांप उठी थी। उन्होंने उसी तरह कहा था—फांसी का मतलब है अमरता.....।

कहते-कहते राधा की छाती उभरी उसने कहा—कुसुम, जैसे ब्राह्मण ने बताया था वैसे ही तो हो रहा है·····।

राधा ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया—बस कलमुंही आगे कुछ न कहना।

राधा बोली शांत गम्भीर—कहने की जरूरत ही क्या है, बहिन ? मैं सब-कुछ देख रही हूँ। लेकिन तू अब जा। मेरी ओर से चिन्ता न कर। मैं स्वस्थ होती जा रही हूं। कुछ दिन पिताजी के पास पहाड़ पर रहकर और भी स्वस्थ हो जाऊंगी। मुझे स्वस्थ होना ही

चाहिए·····।

× × ×

अगले दिन कुसुम सोकर उठी तो बहुत दुखी थी। राधा को आज जाना था, इसीलिए उसका हंसमुख चेहरा बेतरह मुरझा रहा था। उसके पति नवीन बाबू ने देखा तो पूछा—कुसुम ! राधा क्या बहुत दुःख मान रही है ?

पति की ओर देखकर कुसुम बोली—वह अपने को दुःखी नहीं मानती। अपने ऊपर उसे अमित विश्वास है कि मुझे अचरज होता है। कह रही थी दिनेश को फांसी होगी।

नवीन बाबू हठात् चौंक पड़े—उसने कहा था·····।

जी हां। बहुत पुरानी बात है किसी ज्योतिषी ने भविष्य वाणी की थी।

तो-वे क्षण भर झिझके-तो कुसुम उस ज्योतिषी की बात·····।

क्या—कुसुम घबरा उठी। पसीना बह चला। लगा भूकम्प आ गया है।

हां कुसुम। दिनेश को फांसी की सजा हुई। कल ही फोन पर यह समाचार मुझे मिल गया था। रात मैंने किसी को नहीं बताया था। बताता भी क्या, लेकिन अब तो वह सबको पत्र-द्वारा मालूम हो गया होगा। फोन पर वकील ने बताया फांसी की सजा सुनकर जनता रोई, पर वह हंसा था। गर्व से उसने और उसके साथियों ने सिर उठाकर कहा— आज हम अमर हुए। इस अमरता के लिए हम न्याय के कृतज्ञ हैं—लेकिन एक क्षण रुककर अपनी आंखें पोंछते नवीन बाबू ने फिर कहा—लेकिन कुसुम ! अभी न्याय अन्तिम नहीं है। हम अपील करेंगे।

कुसुम की छाती तूफान के झोंकों के समान कांप रही थी। वह जान न सकी क्या करे ? सहसा उसे कुछ ध्यान आया। वह कांप

उठी—राधा आज जावेगी। पति से कहा—मैं अभी राधा के पास जाती हूं। आप भी आइए। और वह शीघ्रता से बाहर निकल गई। मोहल्ले के दूसरे कोने पर उसका मकान था। दिन चढ़ आया था, अनेक पुरुष, बच्चे, बूढ़े, घरों के चबूतरों पर खड़े थे। कुछ बात कर रहे थे, कुछ अखबार पढ़ रहे थे, सभी कुछ-कुछ द्रवित-से थे, सभी एक चर्चा कर रहे थे।

अखबार पढ़ते-पढ़ते एक बोला—उसे फांसी की सजा हुई है।

दूसरा चौंका—किसे ?

दिनेश को।

सच, यह तो बड़ा बुरा हुआ—कहते-कहते व्यग्र होकर उसने अखबार छीन लिया।

दूसरे चबूतरे पर भी यही चर्चा थी। वहां एक वृद्ध सज्जन इस समाचार से तनिक भी स्तम्भित नहीं हुए। मुंह पिचकाकर बोले—जो राजा के दुश्मन हैं, उनकी सजा मौत है ?

तीसरे कमरे में तीन-चार मित्र चाय पी रहे थे। टोस्ट पर मक्खन लगाते-लगाते एक मित्र बोला—सुना आपने, दिनेश को फांसी की सजा हुई है ?

दूसरे ने चाय की घूंट भरी—बड़ा बुरा हुआ ?

तीसरे अभी चीनी घोल रहे थे—बुरा क्या है। यह तो जागृति का सन्देश है। अचरज तो यह है जो फांसी देते हैं वे कैसे भूल जाते हैं जितना जोर से आन्दोलन दबाया जावेगा उतनी ही तेजी से वह पनपेगा।

कुसुम ये बातें सुनकर ठिठकी थी, पर फिर शीघ्रता से आगे बढ़ गई। वह सब सुन रही थी परन्तु उसका मस्तिष्क इतना अस्त-व्यस्त था कि कुछ सूझ नहीं रहा था। उसने शीघ्रता से आगे बढ़कर राधा के दरवाजे पर धक्का दिया। किवाड़ भड़भड़ा कर एकदम खुल गये। कुसुम गिरते-गिरते बची। पुकारा—राधा-राधा, लेकिन दूसरे ही क्षण दृष्टि

उठाकर देखा—घर खाली है और कमरे में ताला लगा हुआ है। कुसुम घबरा उठी—राधा कहां गई, राधा.....तभी सामने आले में देखा—एक पत्र था कुसुम के नाम। झपट कर उठा लिया और पागलों की तरह पढ़ डाला, लिखा था—सबेरे जब तुम आओगी तो घर खाली मिलेगा। मैं पिताजी के पास जा रही हूं। तुम्हारे जाने के बाद प्रकाश जब आया तो उसका मुख म्लान था, वह बोल नहीं पा रहा था। कहने लगा—भाभी...। पर आगे वह रो पड़ा। मुझे हंसी आ गई—इतना छोटा दिल है तेरा! जानता नहीं किसका भइया है! सुन जो तू कहने आया है, वह मैं जानती हूं। जा तांगा ले आ! मैं अभी पिताजी के पास चलूंगी। सबेरे यहां नहीं रहूंगी।

एक दिन उनके पीछे-पीछे मैंने इस मकान में प्रवेश किया था। विश्वास रखो छोड़ूंगी नहीं। मोटी होना चाहती हूं, इसलिए पिताजी के पास जा रही हूं। घर में ताला लगा कर ताली रख लेना। दुःख न मानना, मोटी होकर यहीं लौटूंगी। उनकी समाधि पर अमरस्मृति का दीपक जलाने के लिए मेरा जीवन आवश्यक है।

कुसुम ने पत्र पढ़ लिया। उसके हृदय में हर्ष और पीड़ा एक साथ भर उठे। वह मुरझाई भी, रोई भी। आंखों से आंसुओं की धार बह चली फिर घबराकर दीवार से सट गई और देर तक उसी प्रकार शून्य में ताकती हुई रोती हरी, सोचती रही—वह क्या करे? आखिर वह क्या करे.....?

: ६ :

हरीश पाण्डे

अगस्त, १९४२ के तूफानी दिनों की बात है। मैं जब गिरफ्तार हुआ तो कैदियों की संख्या हजार से ऊपर जा चुकी थी और जेल में बिलकुल जगह नहीं थी। लाचार होकर अधिकारियों को कैम्प लगाने पड़े। जेल के कम्पाउण्ड में और पीछे की तरफ तम्बू डाल दिये गए और कांटेदार तार का घेरा लगा दिया गया। कहते हैं तारों में बिजली दौड़ती थी, पर हमें उसे आजमाने का अवसर नहीं मिला। पहरा काफी सख्त था, लेकिन बाहर कुछ भी हो, अन्दर काफी चहल-पहल थी और कैम्प जेल में हम इस तरह रहते थे; मानों मित्र लोग सैर के लिए आये हों। खेलना, खाना, गप्पें लड़ाना और सभाएं करके लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़ना—यही हमारा प्रोग्राम था। बाहर से लोग मिलने आते, तो कभी-कभी मनचले साथी घेरे के तारों को लांघ कर दूर सड़क पर उनसे बातें करते हुए चले जाते और फिर लौट आते। भागने को किसी का मन नहीं करता था। जेल के पहरेदार देखकर भी अनदेखा कर देते थे। बात वास्तव में यह थी एक तो कैम्प जेल के अधिकारी असली जेल के तानाशाहों की तरह अभी तक मंजे हुए खिलाड़ी नहीं हो पाये थे; दूसरे उनका विश्वास था, देश के लिए मरनेवाले भागा नहीं करते; और तीसरे शायद आजादी की लहर ने चुपके-चुपके अनजाने उनके दिलों को भी छुआ हो। कुछ भी हो, पहरा सख्त होकर भी पाबन्दी सख्त नहीं थी। इसका स्पष्ट प्रमाण तो उस दिन मिला जब थाने से जेल

आते-आते हरीश पाण्डे रास्ते से गायब हो गये।

मेरे आने के तीन दिन बाद पुलिस ने लगभग चालीस आदमियों को गिरफ्तार किया। दिन भर तो वे पुलिस की हिरासत में रहे परन्तु सन्ध्या को उन्हें कैम्प जेल में पहुंचा दिया गया। इस जत्थे में सब अपने जाने-पहचाने व्यक्ति थे—दिनेश, गनपत, रफीक, नूरुद्दीन, सन्तसिंह, शर्मा और वैद्य, आदि आदि। हम तपाक से गले मिले और फिर वह कहकहे लगे कि कैम्प जेल कांप उठा। सबने अपने-अपने घर की बात पूछी, साथियों की हालत दरयाफ्त की और पूछा—अब स्वराज्य के मिलने में कितनी देर है? किसी ने गद्दारी तो नहीं की? सहसा मुझे कुछ याद आया। मैंने दिनेश से पूछा—क्यों दिनेश, पाण्डे कहां है?

दिनेश बोला—पाण्डे! वह तो हमारे साथ आया है।

और फिर चारों तरफ देखता-देखता बोला—मेरे सामने थाने से चला था। शेर के बच्चे जैसा झूम रहा था, परन्तु यार उसकी बीबी बहुत बीमार है।

रफीक को पुकारा—रफीक, पाण्डे कहां है?

रफीक मुस्कराया—क्यों क्या हुआ? हमारे साथ ही तो था।

दिखाई नहीं देता।

तो कहां गया?

यही तो पूछता हूं।

रफीक ने सन्तसिंह, सन्तसिंह ने शर्मा, शर्मा ने गनपत, गनपत नूरुद्दीन से पूछा—क्यों भाई, पाण्डे कहां है?

यहीं तो था।

यहां तो नहीं है।

तो क्या……?

शी, शी...रफीक फुसफुसाया—पाण्डे भागने वाला नहीं है। उसकी बीबी सख्त बीमार है।

तो शायद·····।

शायद·····।

बस—नूरुद्दीन ने अधिकार से कहा—बस अब उसका कोई जिक्र नहीं होना चाहिए।

लेकिन मेरा दिल धक-धक कर उठा। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि पाण्डे भाग सकता है—पाण्डे, जो इतना खुलकर हंसता है कि उसके दिलमें षड्यंत्र और भेद की छाया भी नहीं पड़ सकती। फिर भी यह कठोर सत्य था—वही पाण्डे जेल आते-आते मार्ग में खो गया था और अभी दो घण्टे बाद जब हाजिरी होगी तब अधिकारी इस बात को जान लेंगे। तब पगली बजेगी, तलाशी होगी, जवाबतलबी होगी; परन्तु पाण्डे का पता नहीं लगेगा। शायद लग जायगा; क्योंकि उसकी बीबी बीमार है और वह·····।

मैं कांप उठा—नहीं; नहीं·····।

तो फिर·····।

लेकिन पाण्डेजी !

वे उस समय आराम से निश्छल, निर्भय अपनी रुग्ण पत्नी के पास बैठे हुए कह रहे थे—बात सीधी-सी है। जाते-जाते मन में उठा खाली हाथ जेल जाना ठीक नहीं है। वहां बहुत से मित्र हैं। मुझे देखते ही चिल्ला उठेंगे—अहा पाण्डे ! आ गये तुम ! मुंह मीठा कराओ, तब मैं क्या कहता ? यह पता नहीं था आज ही नम्बर आने वाला है, नहीं तो पहले ही प्रबन्ध कर ले जाता। अच्छा, तो मैं चला। कहां है सुन्दर, उससे कहो जो कुछ हो दे-दे और दस-बीस रुपये भी निकाल दे। और हां; अब तो तुम्हारी तबीयत ठीक है न ?

पत्नी के नेत्र डबडबा आये थे। बोली—तबीयत का क्या अच्छा; क्या बुरा। जितने दिन जीना है, सो जीना पड़ेगा, नहीं, तो·····।

अरे क्या बकने लगी तुम ?—पाण्डेजी एक दम हो-हो करके बोल उठे—'मैं जानता हूं अब तुम्हारी बीमारी दूर होने वाली है। सोच रहा

था, इस बार तुम भी साथ जेल चलती तो कितनी अच्छी बात होती, लेकिन खैर, अब तो यह तपस्या समाप्त समझो। स्वराज्य आनेवाला है। गांधीजी का तप पूर्ण हुआ चाहता है।

और फिर सहसा धीमे पड़कर कहा—स्वराज्य होते ही तुम्हें पहाड़ पर भेज दिया जायगा। तब अपनी सरकार होगी और यह उसका कर्त्तव्य होगा कि राष्ट्र के स्वास्थ्य की देख-भाल करे। सच जानो, इस बार इसीलिए जेल जा रहा हूं कि जल्दी से स्वराज्य आ जाय और घर-गृहस्थी के जञ्जाल से पीछा छूटे। यह राज्य का काम है, आप देखेगा। अच्छा, मैं जाऊं!

पाण्डेजी उठे ही थे कि पत्नी बोल उठी—सुनो तो……।

कहो।

अब मत जाओ।

न जाऊं, मैं……!

हां, तबीयत बहुत गिर रही है, शायद……।

क्या कहती हो तुम? मैं न जाऊं! क्या कहेंगे मित्र? और गांधीजी ने सुन लिया तो शायद अनशन का निश्चय करलें। कार्यकर्त्ताओं के पाप-पुण्य की उन्हें बड़ी चिन्ता रहती है। और चाहे कुछ भी न हो, अपना मन तो है। जीवन भर कचोटता रहेगा—पाण्डे! तू आदमी होकर भागा था। अच्छा, एक बात बताओ।

कहो।

तुम ईश्वर को मानती हो?

ईश्वर को कौन नहीं मानता?

अच्छा! और यह भी मानती हो देश की आजादी के लिए जेल जाना ठीक है?

हां।

तब तुम्हारी चिन्ता और शोक व्यर्थ है। ईश्वर जिसे चाहते हैं और जो स्वयं अच्छा है वह काम मुझे करना ही चाहिये। तुम प्रसन्नता

से जाने दोगी तो तुम्हारे कष्ट भी शीघ्र दूर हो जायेंगे। और देखो, तुम्हारे पास तो सास, ससुर, देवर, ननद, बेटे-बेटी सब हैं; परन्तु ऐसे भी लोग हैं जिनके पीछे उनकी अकेली स्त्री ही रह गयी है; कुछ के पीछे उनकी रुग्णा मां है; किसी का इकलौता बच्चा अभी-अभी मरा है; पर सच मानों उन्हें जरा भी चिन्ता नहीं है। वे जानते हैं हम देश की आजादी के लिए लड़ रहे हैं और आजादी के लिए कोई भी कष्ट, कोई भी कुरबानी ज्यादा नहीं है।

पत्नी का दिल बैठा जा रहा था परन्तु पाण्डेजी की बातों से भी वह इन्कार नहीं कर सकती थी, एक तरह से उसे उनपर गर्व ही होता था। इसीलिए वह अब दिल थामकर उठी, पुकारा—सुन्दर, कमला, सुन्दर·····।

कमला, जो नजदीक थी, दौड़ी आयी—भाभी, क्या है ?

देख, जाली में जो मर्तबान रखा है उसमें जो कुछ भी हो एक रूमाल में बांध दे।

पाण्डेजी बोले—न, न। रूमाल क्यों खोती हो, जेब में भर लूंगा।

❀ ❀ ❀

उसके आध घण्टे बाद जब वे घर से निकले तब दोनों जेबें ठसाठस भरी हुई थीं। वे मुस्करा रहे थे। पत्नी ने उन्हें जाते देखा, एक लम्बी सांस खींची, आंखें भर आयीं—गर्व से या दर्द से, शायद दोनों से; परन्तु पाण्डेजी के पास न दर्द था न गर्व। वे मस्ती से झूम रहे थे और इसी मस्ती में उन्होंने बाजार से बहुत सारे केले, सेब, अंगूर खरीदे। फिर जल्दी-जल्दी चलकर कैम्प जेल के दरवाजे पर आ उपस्थित हुए। उस समय वातावरण में सन्नाटा भरने लगा था। पश्चिम में सूर्य की अन्तिम किरणें पृथ्वी को चूमकर अस्ताचल की ओर चल दी थीं, केवल बड़ी सड़क पर मोटर और तांगों के आने-जाने की आवाज रह-रहकर गूंज उठती थी या अन्दर से कैदियों के गुनगुनाने का धीमा स्वर सन्तरी के कान खड़े कर देता था। वह कसा-कसाया, बन्दूक कन्धे

पर रखे दरवाजे पर मुस्तैदी से टहल रहा था। सीधे उसी के सामने जाकर पाण्डेजी बोले—ऐ सन्तरी ! जल्दी दरवाजा खोलो।

सन्तरी एकदम क्रुद्ध—तमतमा उठा। सिर से पैर तक पाण्डेजी को ऐसे देखा मानों अभी गोली मार देगा और फिर निहायत हिकारत से बोला—कौन है तू ?

हरीश पाण्डे।

क्या मतलब है ?

मतलब ! मतलब क्या ? मुझे अन्दर जाना है।

अन्दर नहीं जा सकता, सूअर। यह जेल है, तुम्हारे बाबा का घर नहीं। भागो यहां से।

और कह कर देखा उनके दोनों हाथ भरे है, जेबें फूल रही हैं। चेहरे पर अल्हड़पन है। समझा कोई मिलने वाला है, दूर से आया है। कहा—शायद किसी से मिलना है। जाओ, कल आना। पाण्डेजी बड़े जोर से हंस पड़े ! बोले—हमें किसी से मिलना नहीं है, हमें तो यहां रहना है सबेरे ही तो सरकार की पुलिस हमें लायी थी।

पुलिस !·····सन्तरी कुछ चौंका।

हां, पुलिस·····।

तुम गिरफ्तार हुए थे ?

कुछ ही समझो, मतलब एक ही है।

अब तो सन्तरी के पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी—तुम आज गिरफ्तार हुए थे, लेकिन थे कहां ?

था कहां। रास्ते से जरा घर तक खाने-पीनेकी चीजें लेने चला गया था।

क्या नाम आपका ?

हरीश पाण्डे, कहा तो भाई ! तुम शायद नये हो, पांचवीं बार आ रहा हूं। हरीश पाण्डे को कौन नहीं जानता। जल्दी दरवाजा खोलो, हाथ दुख रहे हैं।

सन्तरी अब कांप रहा था—आप चले गये थे और लौट आये !

अरे, हां भाई ! लौटने को तो गया था ।

पाण्डेजी·····!

किवाड़ खोल भाई !

लेकिन सन्तरी था विह्वल-विचलित—पाण्डेजी, आप देवता हैं। आपने मुझे बचा लिया, वरना पन्द्रह मिनट बाद हाजिरी होती और··· और मैं गरीब बाल-बच्चे वाला मारा जाता। आप···

पाण्डेजी के भीतर अनजाने गर्वका तूफान उठा पर बाहर से उसी अल्हड़पन से बोले—क्या कहता है ? मैं क्या चोर था, डाकू था, या मैंने किसी के साथ जोर-जुल्म किया था। मैं आजादी की लड़ाई का सैनिक हूं जो ओठों पर मुस्कराहट लेकर सिर कटवाते हैं। हूं···ले बोल क्या खायेगा—केला, सेब, अंगूर, लड्डू या बरफी···।

और कहते-कहते बारी-बारी से सब चीजें उसके ऊपर फेंकते-फेंकते पाण्डेजी कैम्प जेल के अन्दर ऐसे दाखिल हुए जैसे कोई परदेसी युग-युग के बाद घर लौटता है। पुकारा—श्याम, अहमद, सन्तू, रफीक, शर्मा, वैद्य ! अरे कहां हो तुम सब ? चन्दर, ज्योति, गनपत ! देखो, देखो—मैं क्या लाया हूं ।

बस। अब क्या था, देखते-देखते इधर से, उधर से, सामने से, पीछे से हम सब साथी उनपर इस तरह टूटे जिस तरह आसमान से चीलें अपनी खुराक पर टूटती हैं, और वे दिल खोलकर हंस रहे थे—श्याम ! यह सन्तरी बड़े अचरज से कह रहा था—पाण्डेजी ! आप चले गये थे और लौट आये ! पागल कहीं का ? इतना भी नहीं जानता यह आजादी की लड़ाई है और आजादी की लड़ाई का सैनिक ओठों पर मुस्कराहट लेकर सिर कटवाता है·····।

: ७ :

आत्मग्लानि

शंकर ने देखा जगदीश उसी की ओर आ रहा है। उसका हृदय कांपने लगा। उसने चाहा रास्ता काटकर निकल जावे परन्तु घबराहट में वह उल्टे रास्ते पर चल पड़ा। जगदीश और भी पास आगया। अब.....?

शंकर ? जगदीश ने पुकारा।

शंकर चुपचाप चलता रहा।

शंकर ! ठहरो मैं आ रहा हूं।

शंकर क्या करे ? कि धक्का लगा—मूर्ख। घबराता क्यों है ? जगदीश क्या शेर है जो खा जावेगा ? पगला, न जाने क्यों डरता है !

और वह दृढ़ हो उठा। मुस्कराकर कहा—हलो जगदीश ! कैसे हो ?

जगदीश भी मुस्कराया—प्रसन्न हो शंकर ! खूब प्रसन्न।

तुम्हारी कृपा है।

जगदीश बोलते-बोलते चुप हो गया। फिर क्षण भर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। शंकर सोचने लगा—न जाने क्या कहेगा ! जगदीश सोचने लगा—कैसे कहूं ? और जो बात है वह वे दोनों जानते हैं कि जगदीश एक-दम बोल उठा—शंकर। तुमसे एक बात कहना चाहता था।

शंकर एकदम कांप उठा। गले से घरघराता हुआ शब्द निकला—मुझसे ?

हां।

क्या ?

क्षणिक सन्नाटे के बाद जगदीश ने कहा—पीपलवाली गली में जो बुढ़िया रहती है, जिसके तीन लड़के हैं, उसे जानते हो ?

हां, क्यों ?—शंकर ने स्पष्ट कहा।

जगदीश उसी तरह कहता रहा—और जानते हो उसके दोनों लड़के अगस्त आन्दोलन में जेल जा चुके हैं। उनके पीछे बड़ी बहू का स्वर्गवास हो चुका है। छोटी आजकल की है; न जाने कब प्राण निकल जावें। दोनों के नन्हे-नन्हे बालक हैं। उन सबको देखने वाला केवल तीसरा भाई शेष रहा था परन्तु कहते हैं विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। पुलिस ने कल उसे भी गिरफ्तार कर लिया।

शंकर लड़खड़ाया—गिरफ्तार कर लिया।

हां! उसे गिरफ्तार कर लिया। उसका अपराध यही था वह राजबन्दियों का भाई था।

शंकर 'हूं' करके रह गया।

जगदीश ने कनखियों से उसे देखा, कहा—और सुनते हैं वह तुम्हारा मित्र था। कभी तुम लोग साथ-साथ पढ़ते थे।

हां—न जाने शंकर को पसीना क्यों आने लगा।

उसने चारों तरफ देखा। वे बातें करते करते सुनसान सड़क पर आ निकले थे। दूर-दूर तक सन्नाटा छाया हुआ था। सन्ध्या का धुंधला प्रकाश पृथ्वी और आकाश के बीच बिखर पड़ा था और दूर नगर की सड़क पर कोई राहगीर जल्दी-जल्दी घर की ओर लौट रहा था। और जगदीश बिना कुछ देखे उसी तरह बोल रहा था—और शंकर! मैंने यह भी सुना है उसको गिरफ्तार करवाने में तुम्हारा हाथ है।

शंकर यकायक लड़खड़ा उठा—मेरा!

जी तुम्हारा! कहते हैं तुमने उसके विरुद्ध रिपोर्ट की है उसकी ही

क्यों रमेश, प्रभात और किशन की गिरफ्तारी भी तुम्हारे ही संकेत पर हुई है। तुमने...।

जगदीश !—शङ्कर क्रुद्ध हो उठा—तुम जानते हो तुम क्या कह रहे हो ?

जगदीश ने एक बार शङ्कर को देखा और कहा—जानता हूं शङ्कर।

फिर...।

फिर यही कि यदि यह सच है तो इससे बढ़कर घृणित काम और कोई नहीं हो सकता।

जगदीश—शङ्कर का स्वर कांपा—जगदीश ! तुमने ग़लत सुना है।

ग़लत...?

हां ग़लत। मेरा पुलिस से कोई सम्बन्ध नहीं है, हो भी नहीं सकता। मैं तो स्वयं...।

जगदीश मुस्कराया—जानता हूं तुम स्वयं जेल में रह आये हो और यह भी जानता हूं तुम इसी शर्त पर जेल से छूटे हो कि अपने मित्रों को जेल भिजवाते रहोगे...।

जगदीश ! जगदीश !!

मेरी ओर देखो शङ्कर। क्या मैंने झूठ सुना है ? क्या तुमने ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की है।

नहीं, जगदीश। नहीं। यह सब ग़लत है, यह सब भ्रम है।

जगदीश का स्वर सहसा तीव्र हो आया। उसने विद्रूप से कहा—ग़लत है...?

शङ्कर पहले तो कांपा परन्तु दूसरे ही क्षण वह दृढ़ हो उठा। बोला—जगदीश ! मैं क्या करता हूं, क्या नहीं करता ? इसकी टोह रखनेवाले तुम कौन होते हो ? क्या ठीक है और क्या ग़लत यह मेरे सोचने की बात है, तुम्हारे सोचने की नहीं।

जगदीश तनिक भी नहीं झिझका। उलटे उसकी मुस्कराहट और गहरी हो गई। वह बोला—तो आख़िर जो कुछ मैंने सुना वह ठीक है।

यह अच्छा हुआ। मेरा मन शङ्काओं से भरा हुआ था परन्तु अब विश्वास लेकर लौट रहा हूं। मैं तुम्हें मार्ग दिखाने का दावा नहीं करता परन्तु जिस कुमार्ग पर तुम जा रहे हो उससे बचने का अधिकार तो मेरा है ही।

और इतना कहकर जगदीश लौट पड़ा। शङ्कर भयातुर, कम्पित, चकित सहसा स्वयं अपने को धोखा देता हुआ चिल्ला उठा—जगदीश सुनो तो...।

लेकिन जगदीश ने नहीं सुना। तब उसे अकेले ही उस अंधेरे रास्ते पर लौटना पड़ा। उसका मन लज्जा, ग्लानि और क्रोध से भरा पड़ा था। क्षण भर में जी में उठता—मैं आत्महत्या करूंगा। दूसरे क्षण सोचता—दुनिया में कौन क्या नहीं करता? देश का धन बाहर भेजनेवाले पूंजीपति, विदेशी शक्तियों के प्रचारक राजनीतिज्ञ और सारी ब्रिटिश मशीनरी को चलानेवाले सरकारी नौकर ये सब भी तो देश के दुश्मन हैं। ये सब भी तो अपने स्वार्थ के लिये गुलामी की जंजीरें मजबूत करते रहते हैं फिर मुझे ही क्यों दोष दिया जाता है? क्यों...? कि उसका घर आ गया। उसे लगा जैसे कोई उसके आगे-आगे अन्दर गया हो। वह ठिठक गया। उसने सुना किसी ने उसकी पत्नी को पुकारा—शोभा बहू! कहां है तू?

स्वर नारी का था। वृद्धा नारी का जो थक रही थी परन्तु जिसमें क्रोध भरा पड़ा था—खबरदार! जो मुझे छुआ तो!

मांजी! क्या बात है?—स्वर शोभा का था।

मैं तुझसे चरण दबवाने नहीं आई हूं वरन् यह पूछने आई हूं तुम लोगों को सरकार कितना धन देती है? कितना तुम खाते हो? ऐसा कितना बड़ा पेट है तुम्हारा...? क्यों तुम गरीबों के पीछे पड़े हो...!

...मैं कहती हूं गरीब की आह में बड़ी ताकत है। वह लोहे को पानी कर देती है। तू अपने बच्चों को दूध पिलाती है परन्तु उन जैसे मेरे बच्चे भी हैं जो मां-बाप की याद में तड़पकर रह जाते हैं।

सच कहती हूं उनकी आह तुझ पर और तेरे बच्चों पर ज़रूर पड़ेगी। वे सुख की नींद नहीं सो सकेंगे। उनके बदन में कीड़े पड़ेंगे। उनके प्राण तड़प तड़पकर निकलेंगे...।

मां-आं-जी-ई-ई...।

तुझे दर्द होता है परन्तु क्या तू जानती है जिस तरह तेरे दिल में कसक है, पीड़ा है, उसी तरह मेरे दिल में भी दर्द उठता है, मुझे भी बेटों की याद आती है। मेरे छोटे छोटे-बच्चे भी मुझसे पूछा करते हैं—अम्मां ! मां कहां गई ? अम्मां ! चाचा कब आयेंगे ?

शोभा विह्वल हो उठी। उसने रोते-रोते कहा—मांजी ! क्या करूं ? क्या करूं ?

कुछ नहीं बहू ! केवल अपने पति से इतना पूछ लेना कि क्या सचमुच वह तुझे प्यार करता है ? क्या सचमुच वह तेरे बच्चों को चाहता है ? क्या सचमुच...।

आगे शङ्कर से सुना नहीं गया। उसका सिर चकरा उठा जैसे मक्खियां छत्ते से उड़ चली हों। वह घबराकर फिर बाहर लौटा और बिना किसी उद्देश्य के पागलों की भांति दूर तक चला गया और लौट भी आया। उसे अचरज हुआ वह फिर अपने दरवाजे पर खड़ा था। इस बार वह ठिठका नहीं, सीधा अन्दर चला गया। शोभा तब बरामदे में खाट पर बैठी थी। बच्चे सो रहे थे और बिजली का तेज प्रकाश आंगन में बिखरा पड़ा था। शोभा ने शङ्कर को देखा और शङ्कर ने शोभा को। दोनों की आंखें लाल थी। दोनों का चेहरा उतर रहा था। दोनों के हृदय बरसात के बादलों की तरह भरे पड़े थे। शोभा सोच रही थी—आज इनसे लड़ूंगी...पर ये तो कुछ दुखी जान पड़ते हैं।

शंकर सोच रहा था—आज मैं शोभा से कह दूंगा वह किसी के मुंह न लगा करे। दुनिया अपनी आंख के शहतीर को नहीं देखती, दूसरों की आंख का तिनका उसे खटकता है। देशभक्त हैं तो जेल जाने

पर रोते क्यों हैं ? कष्टों से कांपते क्यों हैं.....?

परन्तु—उसने सोचा—आज नहीं ! आज शोभा दुखी है और फिर ऐसी बातों की चर्चा करनी ही नहीं चाहिए !

शोभा बोली—खाना ले आऊं ?

खाना.....।

हां ! यहीं खाओगे या रसोई में ?

नहीं ! मैं खाना नहीं खाऊंगा। मुझे भूख नहीं है।

भूख नहीं है ?

नहीं।

क्यों नहीं है ? क्या खाया था ? क्या पुलिसवालों के पास गये थे ? उनकी जेब से क्या खर्च होता है···?

शोभा—शंकर का स्वर तेज हुआ।

शोभा स्वयं तीव्र हो रही थी। कांपी नहीं, बोली—जानती हूं गुस्सा आ रहा है। आयेगा क्यों नहीं ? उन लोगों की संगति ही ऐसी है ? मनुष्य को पशु बना देती है। देश कितना अभागा है, जो पशुता का नाश करने के लिए नियत किये गये थे वे स्वयं पशु बन गये।

शंकर ने अचरज से शोभा को देखा—तुम्हें यह ज्ञान किसने दिया ? तुम्हें हो क्या रहा है ?

क्या हो रहा है—शोभा लापरवाही से बोली—बताऊं आपको ! मुझे अपनी और अपने बच्चों की चिन्ता हो रही है। आपने हमारे साथ धोखा किया है। आपने हमें स्वर्ग का लालच देकर नरक में ढकेल दिया है।

शंकर को कँपकँपी आने लगी—शोभा ! बन्द करो अपनी ज़बान ! वरना.....।

वरना !—शोभा ने दोहराया।

शायद मैं कुछ कर बैठूँ। मुझे क्रोध आ रहा है। मैं पागल हो रहा हूं।

आप पागल हो रहे हैं। आज जाना है आपने ? मैं तो समझती हूँ आप बहुत दिनों से पागल हैं। भला मस्तिष्क ठीक रहते कोई ऐसा काम कैसे कर सकता है ?

शंकर का मस्तिष्क और भी चकरा उठा। जी में आया सामने बैठी हुई शोभा का गला घोंट दे लेकिन... मस्तिष्क में एक झटका लगा। बुढ़िया की बातें याद आने लगीं.....शोभा स्वयं दुखी है, दुखी मनुष्य सब-कुछ कर सकता है।.....

फिर मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? आत्महत्या करलूं ?—उसका शरीर झनझना उठा। वह बैठा नहीं रह सका। उठ खड़ा हुआ,बोला—शोभा ! मैं नहीं जानता था तुम मुझसे इतनी घृणा करती हो। काश कि तुम मेरे अन्दर झांक पातीं। परन्तु अब क्या हो सकता है ? मैं जिस राह पर चल रहा हूं उससे लौटा नहीं जा सकता परन्तु तुम दूसरी राह चुनने को स्वतन्त्र हो। मैं रोकूंगा नहीं।

और इतना कहकर शंकर यन्त्र की भांति द्वार की ओर मुड़ चला। शोभा जैसे नींद से जागी। क्रोध और झुंझलाहट सब काफूर हो गई। वह कांप उठी। वह इस अवस्था के लिए तैयार नहीं थी। एकदम उठ खड़ी हुई—सुनिये ! अजी सुनिये तो !

आपको मेरी सौगन्ध···।

शंकर नहीं रुका।

शोभा दौड़ी। बाहर की दहलीज में आकर शंकर का हाथ पकड़ लिया। जो क्षण भर पहले क्रोध और अभिमान से भरी पड़ी थी वही आंखों में आंसू भरकर बोली—नहीं, नहीं। आप नहीं जा सकते।

हट जाओ शोभा—शंकर क्रुद्ध था।

नहीं, नहीं। मैं नहीं हटूंगी मैं आपके साथ चलूंगी। नरक में स्वर्ग में, दुख में, सुख में आपका साथ नहीं छोड़ूंगी...।

शंकर विद्रूप से मुस्कराया—शोभा ! आखिर तुम नारी हो। अपना पार्ट खेलना नारी को खूब आता है।

शोभा उसी तरह बोली—कुछ कह लो पर मैं आपको जाने नहीं दूंगी।

शोभा! तुम मुझसे घृणा करती हो?

घृणा—शोभा ने आंसू पोंछ डाले—आप ग़लत समझे! मैं आपसे घृणा नहीं कर सकती। कभी नहीं परन्तु...।

परन्तु...।

परन्तु आपके काम मुझे अच्छे नहीं लगते।

शंकर सहसा अपने ही विरुद्ध विद्रोह कर बोल उठा—काम तो मुझे भी अच्छे नहीं लगते—और कहकर उसे स्वयं अपने शब्दों पर विश्वास नहीं आया परन्तु शोभा को जैसे स्वर्ग मिला—मैं जानती हूं। आपको भी अच्छे नहीं लगते। किसी भी इन्सान को अच्छे नहीं लग सकते पर कभी-कभी इन्सान अपने ही विरुद्ध कार्य करने को विवश हो उठता है...।

शोभा! शोभा! तुम ठीक कहती हो, मैं बेबस हो गया था परन्तु अब वह विवशता मुझे बांधे नहीं रख सकेगी। मैं अब उस पाश को तोड़ दूंगा।

बेशक—शोभा का हृदय हर्ष से गद्गद् हो उठा। वह बोली—आओ प्रियतम! हम यह स्थान छोड़कर कहीं दूर, बहुत दूर चलें। जहां न गुलामी हो, न पुलिस हो, न रिपोर्ट करने की ज़रूरत हो। न किसी पर अत्याचार हो। न किसी की शिकायत हो! नया घर बसाते हमें देर नहीं लगेगी। मैं चरखा कातूँगी, कपड़े सीऊँगी। आप बच्चों को पढ़ाना या खेती करना। कितना अच्छा रहेगा? कितना सुखमय होगा। कोई उलाहना देने न आवेगा।

शङ्कर ने अचरज से इस विह्वल पर दृढ़ होती नारी को देखा। जैसे विश्वास नस-नस में उमड़ पड़ा। गरदन ऊँची करके उसी अन्धकार में उसने कहा—तो चलो। नये जीवन की तैयारी करो। तुम्हें अब

इस पति के कारण लज्जित, अपमानित होने का कोई अवसर नहीं मिलेगा।

और वे घर में लौट आये। उनके बच्चे सो रहे थे। वे दोनों भी फिर कोई बात किये बिना, आत्मा-विश्वास और भविष्य की कल्पना से भरे-भरे सो गये। उसी रात दोनों ने भिन्न-भिन्न स्वप्न देखे। शोभा ने देखा—वे सब इस नगर से सदा-सदा के लिए बिदा होकर आकाश मार्ग-द्वारा किसी दूर देश में उड़े जा रहे हैं। शङ्कर ने देखा—वह बन्दी होकर स्वर्गलोक के न्यायालय में ले जाया गया है। उसका न्याय करने वाला पुरुष अतिशय वृद्ध है। उसी आंखें तेज से पूर्ण हैं, उसके बाल श्वेत रेशम के समान हैं। उसकी पोशाक रत्नों की आभा से चमकती है। उसके समान दो और पुरुष वहां है। वे अपेक्षा कृत युवक हैं। उनकी बलिष्ठ मांसल भुजाएं रत्न-जड़ित केयूरों से सुशोभित हैं। उनमें से एक पुरुष बोल रहा है—यह मनुष्य है। पेट के लिए पाप करना इसका पेशा है। यह अपनी ही जाति पर अत्याचार करता है। अपनी स्त्री अपने बच्चों को पालने के लिए यह अपने समान मनुष्यों की स्त्रियों और बच्चों को भूख से तड़प-तड़पकर मरने को विवश करता है। यह मानता है आज़ादी मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है परन्तु अपनी आज़ादी के लिये दूसरों को गुलाम बनाना इसे प्रिय है। न्याय का ढोंग इसे खूब आता है। सब कुछ करके अपने हाथ झाड़ देता है क्योंकि यह मानता है जो कुछ है पूर्व जन्मों के पापों का परिणाम है।

यह सुनकर वृद्ध पुरुष बहुत हंसे। बोले—इसे पुनर्जन्म बहुत प्यारा है तब यह सुन्दर होगा इस मनुष्य को अगले जन्म में नाबदान का कीड़ा बना दिया जावे...।

इस समय शङ्कर ने कुछ कहना चाहा परन्तु जैसे ही उसने मुंह खोला उसकी आंखें खुल गईं। उसे इस विचित्र सपने पर बड़ी हंसी आई। उस समय पूर्व में पौ फटने लगी थी। वह उठा और सदा की भांति नित्यकर्म में लग गया। फिर शोभा जागी, बच्चे जागे जैसे कभी

कुछ हुआ ही नहीं हों। परन्तु मन ही मन दोनों उमड़-घुमड़ रहे थे। पूछ रहे थे—अब क्या ?

फिर तैयार होकर शङ्कर बाहर जाने लगा तो बोला—आने में देर हो तो चिन्ता मत करना।

शोभा बोली—अच्छा ! लेकिन आप...।

हां आज कुछ निर्णय करके ही लौटूंगा।

और वह चला गया। शोभा सदा की भांति काम में लग गई। रसोई में खटर-पटर मची। गिरस्ती की गाड़ी सदा की पुरानी लीक पर दौड़ने लगी। धीरे-धीरे सबेरे की धूप तीव्र हुई, दोपहर आ गया। खाना-पीना हुआ। शोभा बार बार-द्वार की ओर देखती रही पर शङ्कर नहीं आया। दोपहर बीत गया, सन्ध्या आने लगी। शोभा की चिन्ता बढ़ी। उसने घर के सामान पर एक दृष्टि डाल ली थी। क्या ले जाना होगा ? क्या छोड़ना होगा। सच तो यह है काफी सामान उसने बांध भी लिया। न जाने किस वक्त चल दे।

आखिर दरवाजे पर खटखट हुई। वह दौड़ी—वे आगये।

पर वह चौंक पड़ी—द्वार पर एक युवक था। वह उसे जानती थी। वह बुढ़िया का तीसरा लड़का था जो,सुना था, दो दिन बीते गिरफ्तार हुआ था और कहते हैं उसके पति की रिपोर्ट पर ही गिरफ्तार हुआ था। शोभा सिर से पैर तक सिहर उठी। उसके मुंह से निकला—तुम !

वह मुस्कराया—हां मैं हूँ। क्या अन्दर आ जाऊं।

शोभा यंत्रवत् एक ओर हट गई। वह अन्दर चला आया। वह मुस्करा रहा था। उसने कहा—मुझे देखकर तुम्हें अचरज होता होगा पर घबराओ नहीं। मैं ज़मानत पर छूट गया हूँ और भइया ने मुझसे कहा है...।

वह फुसफुसाई—भइया ने !

हां, शङ्कर भइया ने ?

वे तुम्हें कहां मिले और अब कहां हैं ?

वही, वही बता रहा हूं, भाभी। उन्होंने कहा है सबेरे जब घर से चला था तो तुमसे कहीं दूर भाग चलने की बात कही थी पर फिर सोचा भागना तो कायरता होगी। मुझे यहीं रहना चाहिये।

शोभा का भय यंत्र की भांति दूर होने लगा। उसने कहा—ठीक ही सोचा उन्होंने।

हां भाभी। ठीक ही सोचा उन्होंने और सोचते क्यों न ? तुम रास्ता सुझाने वाली जो थीं।

शोभा लज्जा से, हर्ष से भर उठी। वह कहता रहा—यही सोचकर वे यहां से सीधे सिटी मजिस्ट्रेट के पास गये और अपने गिरफ्तार होने से लेकर आज तक की सब कहानी उन्हें सुना दी।

शोभा कांपी—मजिस्ट्रेट के पास गये। तो अब कहां हैं ?

जहां होना चाहिये।

तुम कहना चाहते हो वे जेल में हैं।

हां भाभी ! वे जेल में हैं। वहीं उनकी मुक्ति का द्वार है। वहीं वे मुझे मिले थे। वे प्रसन्न हैं बहुत प्रसन्न। डरो नहीं, वे जल्दी लौटेंगे।

शोभा को न जाने क्या हुआ ? क्षण भर पहले कांपता हुआ शरीर निश्चल हो गया। प्राणों में स्फूर्ति भर उठी, मुख पर एक तेज उभर आया। बोली—अरे डरना क्या ? अब तो चाहे उन्हें फांसी भी हो जावे।

: ८ :

खण्डित-पूजा

देवेन ने देखा—सन्ध्या बहुत गहरी हो गई है। सड़क के उस पार के बंगलों से बिजली का प्रकाश छन-छन कर बाहर लान की हरी दूब पर बिखर पड़ा है। सड़क पर अपार भीड़ है। मोटर, लारियां, कारें, ताँगे और साइकलें हार्न और घन्टी से अनवरत कर्णकटु शब्द पैदा कर रहे हैं। पीछे के विशाल मैदान में, अभी-अभी लक्ष-लक्ष नर नारियों ने भारत की आज़ादी की प्रतिज्ञा दोहराई है, पानी बरसा चुके छूछे बादलों की तरह छोटी-छोटी भीड़ बिखरी पड़ी है। कोई चाट खा रहा है, कोई वक्ताओं की भाषण-कला पर विवाद करने लगा है, कोई एक मन आने जाने वाले जन समूह को देख रहा है। उनके मन में घर पहुंचने की उतावली है। इन्हीं के बीच में रास्ता बनाते-बनाते देवेन अपने मित्र नीलम के साथ सहसा गम्भीर विवाद में उलझ गया है। नीलम जीवन की कठोरता में विश्वास करता है। उसके लिए नियम, जीवन-मरण सबसे ऊपर है और देवेन जीवन को जैसे वह है—उसी रूप में ग्रहण करता है। नियम, बन्धन उसके लिए बहती नदी की धारा को रोकने के समान है। धारा को रोकना जीवन की हत्या करना वह मानता है। इसीलिए नीलम की तीव्रता उसके लिए अस्वाभाविक है, इसीलिए नीलम के तीव्र होते ही वह मुस्करा उठता है। आज भी मुस्करा उठा। चाहा कुछ कहे कि नीलम फिर बोल उठा—उधर देखते हो ?

उधर जो कुछ था वह देवेन ने देखा, बोला—देख रहा हूं।

वे आज़ादी की प्रतिज्ञा लेने आई थीं।

बेशक।

जानते हो उनके लिए आज़ादी का मूल्य क्या है?

आज़ादी, आज़ादी है और क्या हो सकती है?

नीलम विद्रूप से हंसा—आज़ादी, आज़ादी है, मूर्ख। आज़ादी का अर्थ समझने वाले इस प्रकार नहीं रहा करते। देखते हो उनके ओठों की लाली, मानो रक्त लपेट लिया है।

वीभत्स—देवेन घृणा से बोल उठा—छी। नीलम! तुम इतने कृपण हो यह आज जाना है। देखता हूं ये लड़कियां सुन्दर है पर...।

सुन्दर—नीलम ने क्रुद्ध होकर कहा—सुन्दरता क्या यही है? यह तो सौंदर्य का प्रदर्शन है। देखते नहीं झिलमिल करती हुई रेशमी साड़ी को। ओवर कोट में से होकर वह नदी की तरंगों की तरह धरती पर बिखरी पड़ती है। उनके गोलाकार कर्णफूल, उनकी मुक्त लम्बी वेणियां उनकी चंचल आखें, ये सब क्या आज़ादी के सैनिकों को शोभा देती हैं?

देवेन ने उसी तरह कहा—आज़ादी के सैनिकों को क्या शोभा देता है यह मैं नहीं जानता। परन्तु इतना ज़रूर जानता हूं उनको यह सब शोभा दे रहा है। और उसका प्रमाण है तुम्हारे शब्द। उनको देखकर तुमने अपने मानस-पलट पर जो चित्र अंकित किया है वह एकदम यथार्थ न होकर भी बुरा नहीं है।

नीलम अप्रतिभ झुंझला उठा—देवेन तुम.....

कि देवेन ने पुकारा—रजनी, वीणा! ठहरो हम भी चलते हैं।

सहसा वे दोनों युवतियां ठिठक गईं; फिर देवेन को देखा तो मुस्करा पड़ी। रजनी बोली—ओ देवेन भइया! आपको आज़ादी से कब से प्रेम हुआ? कवि महाशय!

जब से आपको।

जी!.....वीणा कहते-कहते रुक गई।

कहिये, कहिये! ये अपने मित्र नीलरतन बाबू हैं। प्यार से हम

नीलम कहते है। नाम जितना कोमल है आप उतने ही कठोर हैं।

रजनी ने धीरे से कहा—ठीक तो है। अमूल्य होकर भी नीलम आखिर पत्थर है।

देवेन बड़े जोर से हंस पड़ा— अरे नहीं रजनी ! मेरा यह मतलब नहीं था। हमारे नीलम बाबू आर्तजनों के प्रति बड़े सदय हैं। केशवाश्रम आप ही का है।

वीणा और रजनी सहसा चौंक पड़ीं—केशवाश्रम के नीलरतन चौधरी आप ही हैं। फिर दोनों ने हाथ जोड़कर नीलम को प्रणाम किया। रजनी बोली—अज्ञान में जो कुछ हमने कहा उसके लिए क्षमा कर दीजिए ?

नीलम बोला—जो कुछ आपने कहा उसमें असत्य कुछ नहीं है इसलिए क्षमा का प्रश्न नहीं उठता और अगर उठता है तो वह मेरे लिए है। आपको लक्ष कर के मैंने अभी कहा था जो इस प्रकार सौंदर्य का प्रदर्शन करते हैं उन्हें आज़ादी की प्रतिज्ञा लेना शोभा नहीं देता।

वीणा, रजनी दोनों ठगी-सी देखतीं रह गईं। देवेन का मुख फीका पड़ गया। वह परिस्थिति को संभालने के लिए कुछ कहे कि रजनी बोल उठी—नीलम बाबू ! सोचने को सबके पास अपनी-अपनी बुद्धि है। जिसकी दृष्टि जितनी दूर जाती है उसके लिए आकाश उतना ही दूर है पर इस बात को लेकर कोई भी दो व्यक्ति कभी लड़ते नहीं देखे गये। हम भी क्यों लड़ें ? इसलिए हमारे प्रदर्शन को देखकर आपके मन में जो विचार उठे विश्वास रखिये उसके लिए हमें कोई चिन्ता नहीं है।

वीणा ने कहा—सच जीजी। जिसका मन जैसा होता है उसके विचार भी वैसे ही होते हैं और फिर नीलम की ओर मुँह करके वह बोली—भइया अक्सर आप की चर्चा किया करते हैं, विशेष कर आपके खरेपन की। मन की बात इतनी स्पष्टता से कह देना खरेपन के कारण ही सम्भव है पर एक बात मैं पूछती हूं जिस प्रदर्शन की आप निन्दा

करते हैं आज़ादी के उपासक उसी की पूजा के लिए कुछ क्षण पहले यहां एक मन होकर बैठे थे !

नीलम ने इन शब्दों की चोट को महसूस किया क्योंकि कई क्षण तक वह चुपचाप चलता रहा फिर बोला—आपकी बुद्धि की प्रशंसा कर सकता हूं वीणा देवी.....

वीणा ने कहा—मैं देवी नहीं हूं आप केवल 'वीणा' कह सकते हैं।

नीलम बोला—आपको क्या कहकर सम्बोधन करना चाहिए यह मेरे जानने की बात है। और फिर आपको मात्र 'वीणा' कह सकूं मुझ में इतना अपनापन अभी पैदा नहीं हुआ है, पत्थर जो ठहरा। लेकिन वीणादेवी ! मैं आपकी बात का जवाब दे दूं। कब कोई अवस्था प्रदर्शन बन जाती है इस बारे में इस दुनिया में सदा मत-भेद रहा है, रहेगा भी। परन्तु यह मानकर भी प्रदर्शन बुरा है, कुछ बातों का प्रदर्शन जीने की प्रेरणा देता है। उसे अपेक्षाकृत कम पाप समझकर ग्रहण किया जा सकता है, परन्तु जिस प्रदर्शन में विष है वह मौत का कारण होता है। मौत प्यारी है, परन्तु जीवन के बाद। जीवन जिसने भोग लिया है उसे मृत्यु का आलिंगन चाहिए ही, परन्तु जिसने अभी जीवन का दर्शन भी नहीं किया उसे यदि मृत्यु की गोद में धकेला जाय तो वह निरा अनाचार होगा। हमारे इस अभागे देश को आज जीवन के सन्देश की जरूरत है, मौत के नहीं। हां यदि कोई इस अधिकार के लिए मृत्यु का वरण करता है, तो उसका साहस स्पर्धा का विषय है।

यह बात सुनकर वीणा कुछ खिसिया गई। बोली—आपकी बात सुनकर तो ऐसा जी करता है, सब कुछ छोड़कर सन्यासिनी हो जाऊं।

रजनी ने कहा—जिसका जी इतनी जल्दी पलट सकता है वह सदा सलेट पर लकीर खींचेगा, पत्थर पर नहीं। वीणा, मेरे मन में संन्यासी बनने की बिलकुल चाह नहीं है। समय पड़ने पर मेरी रेशमी साड़ी मेरे मार्ग का बन्धन बनेगी, इतनी कायर मैं नहीं हूं।

और इतना कहकर रजनी ने ग़ौर से एक दृष्टि नीलम पर डाली।

ऊपर से वह उसी तरह शान्त था यद्यपि भीतर ही भीतर वह रजनी के प्रति प्रशंसा से भर चला था। चोट खाकर भी प्रशंसा करना नीलम जैसे व्यक्ति जानते हैं। परन्तु वीणा अपनी बहिन के इस उत्तर से, गर्व से भर कर भी पृथ्वी में गड़ चली—मुझे यह उत्तर क्यों न सूझा ? क्यों भला·····।

लेकिन बात आगे बढ़ते-बढ़ते सहसा आप ही रुक गई। वे अब बस स्टेण्ड के पास आ गये थे और नीलम की बस तैयार थी। उसने देवेन से कहा—मैं अब चलता हूं। फिर हाथ जोड़कर सबको नमस्कार किया। बोला—आज अचानक आप लोगों से मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। आश्रम में आइयेगा तो आगे बातें होंगी।

वीणा ने कहा—बुलायेंगे तो ज़रूर आयेंगी पर आश्रम में क्या बातें हो की जाती हैं ?

नीलम ने उत्तर में जो कुछ कहा वह सुन न पड़ा। बस चल पड़ी थी। सब लोग हाथ जोड़े खड़े रह गये, फिर वीणा बोली—नीलम बाबू प्यूरीटैनिक टाइप के व्यक्ति जान पड़ते हैं।

देवेन ने कहा—जी, शुद्ध गांधीवादी हैं, परन्तु कर्मठ बहुत हैं। अकेले जंगल में रहते हैं।

रजनी बोली—सुना है जिनकी बुद्धि कुण्ठित होती हैं उनके हाथ बहुत काम करते हैं।

वीणा, जीजी की इस बात से प्रसन्न नहीं हुई, बोली—जीजी ! बिना देखे राय बनाना ठीक नहीं होता। परसों हम लोग उनके आश्रम में चलेंगे।

* * *

और उसके तीसरे दिन।

जैसे ही देवेन ने आकर पुकारा, रजनी और वीणा दोनों अपने-अपने कमरे से निकल आईं। दोनों बिलकुल तैयार थीं परन्तु आश्चर्य एक-दूसरे को देखकर दोनों चौंक पड़ीं। वीणा ने देखा—जीजी ने शुद्ध

खद्दर की साड़ी पहनी है। पैरों में चप्पल हैं और कानों में सादे टौप्स। बिलकुल देश-सेविका-सी लगती है। इसके विपरीत वीणा ने अपनी सब से सुन्दर रेशमी साड़ी पहनी थी, ऊपर से ओवर कोट डाला था। उसके मत्स्याकार कर्णफूल कोट के कालर को छूकर हिल-हिल उठते थे। उसके मस्तक पर लगी त्रिपुण्ड्राकार बिन्दी बार-बार चमक उठती थी। वीणा ने सोचा, मैंने कितनी गलती की, आश्रम में क्या ऐसे जाया जाता है? जीजी ठीक है पर·····उसे जीजी की परसों की बात याद आ गई। वह खीज उठी, यह जीजी मुझे बार-बार पराजित कर देती है।

उधर रजनी ने मन ही मन कहा—शाबास वीणा! तुमने मुझे पराजित किया है। दोनों का मन कुछ म्लान हो उठा, परन्तु शीघ्र ही रास्ते के सुहावने दृश्य ने उन्हें फिर प्रफुल्लित कर दिया। बस से उतर कर उन्होंने देखा—दूर-दूर तक खेत फैले हैं, क्षितिज के किनारों पर धूल भरे पहाड़ नजर आते हैं और उनके नीचे जंगल के वृक्ष हैं। कहीं-कहीं पुरातन काल के वैभव की याद लिये काले खण्डहर पड़े हैं। धूप चमक उठी है और कृषक बालिकायें हरे-भरे लहलहाते हुए खेतों के बीच किसी कुएं से पानी की गगरिया सिर पर धरे गांव को लौट रही हैं। रह-रह कर वे किसी गीत की कड़ी गुनगुना उठती हैं·····।

कठिनता से वे दो फर्लाङ्ग चले होंगे कि खेतों के उस पार केशवाश्रम के वृक्ष दिखाई देने लगे। मुख्य द्वार के साथ दो कमरे थे। उन्हीं के साथ-साथ एक रास्ता निकाला गया है। उसी रास्ते के दोनों ओर बहुत से छोटे-छोटे घर बने हैं। कच्चे होकर भी वे सुन्दर हैं। उनके पुस्ते ऊंचे हैं। उन्हीं पर धूप में बैठे बच्चे खेल रहे हैं। कुएं पर रहट चल रहा है। बैलों के गले में बंधी घन्टी टन-टन कर बज उठती है और चरस को खींचते समय किसान की ऊँची गर्वीली आवाज बड़ी प्यारी लगती है·····।

सहसा बच्चों ने इन तीन नवागन्तुकों को देखा। वे अचरज से

ठिठक गये। जो सयाने थे वे हाथ जोड़कर बोले—नमस्ते। फिर तो सभी ने एक स्वर में 'नमस्ते' 'नमस्ते' पुकारना शुरू कर दिया। कोलाहल सुनकर कहीं से नीलम और उसके साथी वहां आ गये। उन्हें देखकर नीलम मुस्कराया—ओ, आप !

रजनी हँसी—आश्चर्य होता है नीलम बाबू ! बात कुछ ऐसी ही है……।

नीलम भी हँसा—जी नहीं। इसमें अचरज की क्या बात है और वास्तव में अचरज की बात तो कुछ होती ही नहीं लेकिन हां, आप लोग आये यह बहुत सुन्दर है। स्वागत-सत्कार तो आप जानती हैं…।

नहीं, नहीं—रजनी बोली—स्वागत-सत्कार की चिन्ता आप न कीजिए। प्रकृति ने आपके अनजाने ही आपको उस भार से मुक्त कर दिया है। सच मुझे तो आपसे ईर्ष्या होती है। कैसी मन-भावन जगह है, क्यों न वीणा ?

वीणा बोली—सच जीजी, उन बच्चों को देखो न ! कैसे प्यारे लगते हैं ? और नीलम की ओर मुड़कर कहा—पास के गांव के बच्चे हैं शायद !

जी हां। जो गांव पास लगते हैं उनमें बसने वाले हरिजनों के बच्चे यहां आते हैं।

मैं इनसे बातें कर सकती हूं।

हां, हां।

बस वीणा उसी क्षण बच्चों में जा मिली। रजनी और देवेन नीलम के साथ घूम-घूम कर आश्रम देखने लगे। देखकर लौट आये पर वीणा-बच्चों को लेकर उलझी हुई है। देखा—कीट एक तरफ पड़ा है। साड़ी अस्त-व्यस्त हो रही है। उसी तरह कच्चे फर्श पर बैठी धीरे-धीरे बच्चों को कुछ सुना रही है। बच्चे कभी किलकारी मार कर हंसते हैं तो कभी गम्भीर हो जाते हैं ……।

अच्छा—वीणा बोली—मैं तुम्हें एक खेल बताती हूं, एक नया

खेल। देखो मैं कहूंगी—देखो देखो नीलम दादा आये। फिर तुम लोगों में से पहला लड़का कहेगा—नीलम दादा बम्बई से आये। दूसरा फिर दूसरे शहर का नाम लेगा, तीसरा तीसरे का इसी प्रकार सबको एक-एक शहर का नाम लेना होगा। जो न ले सकेगा वह लड़का हार जायगा।

लड़के बड़े प्रसन्न हुए और खेल शुरू हो गया। बहुत देर तक चलता रहा। वे लोग तन्मय विमुग्ध खड़े-खड़े देखते रहे। रजनी बोली—ऐसा लगता है जैसे वीणा सदा से ही इनमें रही है।

देवेन ने कहा—देखो न साड़ी का क्या भुस बना डाला है। इसके भाग्य पर मुझे दुःख होता है।

नीलम सहसा बोल उठा—और मुझे गर्व।

अपनी-अपनी समझ है कवि महाशय।

देवेन ने कहा—सो तो है, दादा। पर क्या बता सकोगे तुम्हारा गर्व साड़ी के प्रति है या साड़ी के स्वामी के प्रति।

नीलम न जाने क्यों झेंप गया और शीघ्रता से बोला—ओ! खाने का समय होगया। रामू घन्टी बजा दो और चलो देवेन! चलो बहिन! भोजन घर की व्यवस्था देखें।

रजनी ने कहा—भोजन घर की चिन्ता आज आप मुझ पर छोड़ दीजिए। जानती हूं आप स्वयंपाकी हैं पर आज आपकी छुट्टी है। आदमी भी तो बहुत हैं।

उधर रामू ने घन्टी बजा दी। बच्चे चौंक कर उठे—छुट्टी हो गई। इत्ती जल्दी! इत्ती जल्दी क्यों?

वीणा को भी होश आया देखा—सचमुच धूप गहरी है। उसकी वेश-भूषा एकदम अस्त-व्यस्त है। साड़ी जगह-जगह से मैली हो गई है। उसे अपने ऊपर लज्जा-सी हो आई, बोली-हां! अब तुम जाओ। एक दिन फिर आकर बहुत सी कहानियां सुनाऊंगी।

सच—वे बोले।

हां, हां, सच।

तब मन मार कर बच्चे चले गये। तभी नीलम ने आकर कहा—वीणा देवी! आप बच्चों से इतना प्रेम करती हैं यह देख कर मुझे बड़ी खुशी हुई। देखिये आपने अपनी साड़ी का क्या भुस बना डाला है?

वीणा साड़ी झाड़ती-झाड़ती बोली—मैं स्वयं अभी बच्ची हूं इसलिए वे मुझे प्यारे लगते हैं। नई-नई साड़ियां, नया-नया फैशन नई-नई बातें सभी मुझे प्यारी लगती हैं। और नीलम बाबू बातें तो आप भी नई नई करते हैं परन्तु·····

परन्तु क्या·····।

परन्तु यही कि वे बूढ़ों वाली होती हैं जैसे जीवन आप के लिए कोई ठोस पदार्थ है उसमें न स्पन्दन है, न धड़कन। मात्र मशीन। पर यह भी क्या जीवन है। यह तो खरी मौत है

मौत!

जी! मैं तो उसे मौत ही समझती हूं। जीवन और मौत इन दो के अतिरिक्त और है भी क्या जो मैं समझूं।

नीलम हँस पड़ा—है क्या नहीं, जीवन और मृत्यु के बीच हम तुम हैं, यह अनन्त संसार है।

वीणा चौंक पड़ी। उसने आश्चर्य से नीलम को देखा—इस सिद्धान्तवादी के मुंह से यह क्या निकला, पर कह कर नीलम स्वयं काँप उठा था। तर्क की प्रबल भावना ऐसा अनर्थ कर सकती है यह उसने नहीं समझा था परन्तु ठीक समय पर रजनी ने उन दोनों की रक्षा की। पुकारा—वीणा! देवेन भइया! नीलम दादा! कहां हो तुम लोग? भोजन तैयार है।

दोनों जैसे मुक्त हुए। छत की मुंडेर पर बैठे हुए देवेन ने उनके मुख पर आते हुए प्रकाश को स्पष्ट देखा। देखकर मुस्करा उठा परन्तु बिना कुछ कहे वह रसोई-घर में पहुंचा। सब लोग आ गये थे, वीणा, नीलम और उसके सभी साथी। सब ने मिलकर एक साथ भोजन

किया। भोजन में कोई विशेषता नहीं थी परन्तु भोजन करने के तरीके में अवश्य एक विशेषता थी। उसीने सब के अन्तर को छुआ। नीलम के एक साथी जो गांव के मिडिल पास हरिजन थे बड़ी नम्रता से बोले—दादा! आज आप लोगों के साथ भोजन कर के जीवन धन्य हो गया है।

देवेन ने कहा—सच! मन करता है रोज-रोज इन लोगों को लेकर यहां भोजन करने आया करूं।

दूसरे साथी बोले—हम लोगों के ऐसे भाग्य कहां जो आप लोग रोज आवें।

तीसरे ने कहा—आने वाले रोज भी आते हैं, पर आप तो ऐसे आये जैसे जन्म-जन्म के साथी हों। और जीजी! आपने तो सचमुच साक्षात् अन्नपूर्णा मइया की तरह हमको भोजन कराया है……।

वीणा एकदम बोल उठी—आप लोग इतनी जल्दी असंयत हो उठे हैं, बड़ी कच्ची धरती है इस आश्रम की।

साथी लोगों ने इसका अर्थ नहीं समझा पर जिसको लक्ष कर के ये शब्द कहे गये थे वह समझ कर भी अनसमझ बना रहा। उसने फिर उस दिन कोई भी शब्द न बोलने का प्रण कर लिया था। वह समझ रहा था जो अधिक बोलते हैं वे धोखा खाते हैं। आज अभी-अभी उसने भी खाया है। जो वाक्य उसके मुख से निकल गये हैं उन पर स्वयं उसे महान खेद हो रहा है। आखिर यह हुआ क्या? मन में ऐसा कुछ भी है, जिसे मैं नहीं जानता? जब मैं अपने-आपको ही नहीं जान पाता तो दूसरों की कमजोरियों पर दिल्लगी करने का मुझे क्या अधिकार है?

इसीलिए उन लोगों के चले जाने के बाद उसने अपने को पूरी तरह काम में फंसाने की चेष्टा की परन्तु प्रकृति का नियम बड़ा अद्भुत है नीलरतन बाबू ने समझा था वह घटना सलेट पर लिखी गई इबारत है, पानी से धोने पर साफ हो जावेगी परन्तु अचरज? धोने के बाद देखा—वह तो सलेट के पत्थर पर गहरी अंकित हो गई है। टूट जाने पर

भी उसका मिटना असम्भव है। फिर उनके साथी और बच्चे हैं जो सदा रेखा को गहरी करने में योग दिया करते हैं। बच्चे रोज पूँछते हैं—वे कब आयेंगी ?

जानबूझ कर वे पूँछते हैं—वे कौन ?

वे जो कहानी कहतीं थीं।

आयेंगी।

कब !

एक दिन।

और सचमुच एक दिन सबेरे ही सबेरे वीणा चुपचाप आश्रम में आपहुंची। वहीं नीलम खड़ा था, चौंक पड़ा—आप !

जी।

अकेले !

जी।

क्यों ?

क्यों·····कि दोनों चौंक पड़े। मुस्करा कर वीणा बोली—जीजी अपने घर चली गई, अकेले जी नहीं लगा, फिर बच्चों में खेलने को मन करता था सो चली आई।

नीलम ने पूछा—घर वाले जानते हैं ?

जानना क्या ज़रूरी है ?

हां।

और न जाने तो·····?

तो आप का यहां आना मुझ पर अत्याचार होगा जिसे·····

वाक्य पूरा किया वीणा ने—जिसे आप सहना गवारा न करेंगे यही न। आप डरें नहीं। मेरा दायित्व आप पर लादेंगे इतने मूर्ख मेरे घर वाले नहीं हैं। जिन लोगो ने मुझे आज़ादी दी है, आज़ादी के लिए साधन दिये हैं, वे यहां आने की बात सुन कर डरेंगे नहीं ? आप पर उन्हें विश्वास है।

इस अन्तिम वाक्य ने नीलम के मर्म को छेद दिया। वह बाण-विद्ध मृग की भाँति तड़प उठा। एक बार मन में आया, कहे—अभागी लड़की मेरे ऊपर विश्वास-अविश्वास करने वाले तुम लोग कौन होते हो? परन्तु जैसे ही शब्द-कण्ठ में आये, अग्नि के धूम की भांति मस्तिष्क में एक दूसरा विचार भी आ गया और वह शान्त मन बोला—वीणादेवी! मैं क्षमा चाहता हूं मेरा आशय यह कदापि नहीं था। अचानक आपको अकेला देखकर.....

इस बार भी वाक्य वीणा ने पूरा किया। हँस कर बोली—मुझे अकेले देखकर आपको डर लगा, कहीं मैं भाग आई हूं।

नीलम हँस पड़ा।

वीणा उसी तरह बोली—सच जानिये मैं भाग कर आई हूं।

नीलम भी उसी तरह बोला—सो तो देख रहा हूं आने की बात अचानक ही सूझी है। इसीलिए न रेशमी साड़ी है, न कर्णफूल, न त्रिपुण्ड्राकार बिन्दी।

ओ—वीणा व्यंग से हँसी—तो आप इतने गहरे हैं। तभी जीवन और मृत्यु के बीच के रहस्य को जानते हैं।

आश्चर्य! तिलमिलाने के स्थान पर नीलम हँस पड़ा और फिर वीणा उस दिन वहीं रही। उसके लौट जाने पर नीलम ने एक घोर निश्चय कर डाला—मैं वीणा को पत्र लिखूंगा भविष्य में वह इधर न आवे। सौंदर्य प्रदर्शन के अतिरिक्त आजकल की युवतियां युवकों का मन मोहने की और बहुत-सी कलायें जानती हैं। हाय रे भाग्य! इन अभागे युवकों का इस मोह बन्धन से कहीं भी छुटकारा नहीं है।

लेकिन जब तक वह ऐसी चिट्ठी लिखे तब तक एक बार फिर वीणा आश्रम में आ पहुंची। नीलम ने देखा—इस बार उसने शुभ्र स्वच्छ खद्दर की साड़ी पहनी है। हाथों में काँच की दो-दो चूड़ियों को छोड़ कर शरीर पर और कोई आभूषण नहीं है। यहां तक कि कानों में कर्ण-फूलों के स्थान पर तोलियां डाली हैं, देखकर वह एक साथ भय, श्रद्धा

और अचरज से भर उठा। वीणा स्वयं सदा की भांति निर्द्वन्द नहीं थी। गहरी गम्भीरता उसके चंचल नेत्रों से बही पड़ती थी। अवसर पाकर उसने नीलम बाबू से कहा—आज मैं एक विशेष काम से आई हूं।

नीलम अनमना सा-बोला—जी, कहिये।

आगे बिना किसी भूमिका के वीणा ने कहा—देश-सेवा के लिए मैं दीक्षा लेना चाहती हूं।

तो.....अचकचाकर नीलम ने पूछा।

आप दे सकेंगे!

मैं.....!

जी।

क्षण भर नीलम हतबुद्धि-सा वीणा को देखता रहा फिर सब कुछ समझ कर उसने स्पष्ट शब्दों में कहा—वीणा देवी। मुझे दुःख है मैं आपकी सहायता नहीं कर सकूंगा। मैंने आजन्म अविवाहित रहने का प्रण कर रखा है।

सुनकर वीणा कांप उठी। उसकी सहज बुद्धि कुंठित हो गई। जिस तथ्य को यत्न करके उसने इतने आवरणों के नीचे छिपाया था वह सहसा जेबुन्निसा के बदन की तरह चमक उठा, तो वह हतबुद्धि-सी देखती ही रह गई। अथाह सागर के नीचे जो भाव छिपा था वह शब्द के एक झटके से तल पर आ जावेगा, यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था लेकिन अचरज इतना होने पर भी एक गहरे विजय-गर्व से उसका मन उच्छ्वसित हो उठा। वह मुस्करा कर बोली—आपकी स्पष्टवादिता और स्वीकारोक्ति से मैं बहुत खुश हूं। विश्वास रखिये, आस्तिक हूं। भगवान से प्रार्थना करूँगी वह आपकी सहायता करें लेकिन साथ ही चाहूंगी आप भी अपने इष्टदेव से मेरे लिए मंगल-कामना करते रहें।

नीलम ने इतना ही कहा—करूँगा वीणा देवी।

तो विश्वास रखिये हम दोनों का कल्याण होगा।

और इतना कहकर वीणा आश्रम से चली गई। नीलम देर तक इस लड़की की बात सोचता जहां का तहां बैठा रहा। विचारों का एक अथाह सागर उसके भीतर उमड़ पड़ा। उसे तैर कर पार करने में असमर्थ उसका मन हड़बड़ा उठा, लगा जैसे पानी मुँह, नाक, आँख, कान सभी छिद्रों से होकर उसे तले बैठाने को व्यग्र हो उठा है। उसने तब अवरुद्ध कण्ठ से भगवान के दरबार में गुहार की-प्रभो! अपराध मेरा ही अधिक है। मैं नारी से जितना दूर भागना चाहता हूं उतनी ही उसके प्रति मेरी आसक्ति बढ़ती है। मैं वीणा को कभी भी प्रेयसी से भिन्न रूप में नहीं देख सका। मुझे शक्ति दो प्रभु, मैं प्रायश्चित्त करूंगा।

और फिर उसने अपने को देश के हित अर्पण कर दिया। तब से उसने दिन देखा न रात देखी। रामधुन की तरह वह देशधुन का राग अलापने लगा। मात्र वाणी से नहीं, कर्म से भी उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की चेष्टा की। यहां, वहां, इधर-उधर चारों तरफ सबको नीलम ही नीलम दिखाई देने लगा। लोग प्रशंसा से भर उठे—नील रतन जैसा माई का लाल और कौन होगा?

यह प्रशंसा उस दिन तो सब सीमायें पार कर गई जिस दिन विद्यार्थी संघ का जलूस निकला था। आश्रम-वासियों को लेकर वह शहर आया था। सहसा उसने सुना, पुलिस ने जलूस रोक दिया है। वह तुरन्त घटना स्थल पर पहुंचा। देखा अपार—जन समूह है। स्त्री, पुरुष, युवा वृद्ध, बालक, युवक, युवतियां सभी उत्साह-उमंग से भरे धरती पर बिखरे पड़े हैं। वे पूर्णतया शान्त हैं परन्तु वे आगे बढ़ना चाहते हैं और पुलिस पीछे हटाना चाहती है। उन्होंने कहा—हम पीछे नहीं हटेंगे।

पुलिस अधिकारी बोले—आपको पीछे हटना होगा। आप इस रास्ते से नहीं जा सकते।

हम जायेंगे।

तो मुझे गोली चलानी पड़ेगी।

अनेक कण्ठ एक स्वर में बोल उठे—मृत्यु एक बार आती है, उससे हम डरते नहीं।

सुनकर नीलम गद्‌गद् हो उठा। जीवन और मृत्यु का रहस्य ये लोग जानते हैं, पर वह मानता था यह मरने का समय नहीं है। इसी-लिए उसने उन्हें समझाना चाहा तभी सहसा एक कोने में कोलाहल मचने लगा, किसी ने पत्थर फैंके, पुलिस आगे बढ़ा। क्षण भर शान्त, निर्द्वन्द भीड़ उत्तेजित होकर चारों ओर भाग चली। पुलिस ने फायर कर दिया। नीलम हतबुद्धि, क्रुद्ध उधर ही दौड़ा जिधर गोली चली थी। वह चिल्लाया—बन्द कर दो, फायर बन्द कर दो।

लेकिन फायर हो रहे थे। भीड़ भाग रही थी। जलूस के मुख्य नेता दृढ़ स्थिर सड़क पर बैठे थे। वह चिल्ला रहा था—बन्द कर दो; फायर बन्द करदो।

तभी किसी ने दूर से पुकारा,—नीलम बाबू! पीछे हटिये! नीलम बाबू—यह वीणा थी। जलूस के मध्य भाग से उसने चलते हुए नीलम को देख लिया था पर नीलम अब भी चल रहा था, उसका मुख तप्त सूर्य की तरह लाल था, उसकी आंखें आग की तरह दहक रही थीं; उसकी साँस झंझा की तरह क्रुद्ध थी, उसकी गति तूफान की तरह प्रबल थी। वह चिल्ला रहा था—बन्द कर दो, फायर बन्द करदो। वीणा पास आ गई, उसने नीलम को पकड़ कर खींच लिया। नीलम! क्या करते हो पीछे हटो।.....

नीलम नहीं हटा, फायर हुआ...और आगे भागने में असमर्थ वह गिर पड़ा। रक्त की एक रेखा मुख को रंग से अभिषिक्त करती हुई धरती माता की छाती पर फैल गई। वीणा पागल की तरह घुटने टेक दोनों हाथों मे उसे उठाती आर्त्तस्वर में बोली—नीलम! नीलम! यह क्या किया तुमने?

नीलम की आँखें खुलीं। एक दिव्य मुस्कराहट उसके मुख पर फैल गई। अति धीमे, अति स्नेह से बोला—वीणा.....

और फिर उसने निर्विरोध निर्द्वन्द्व अपने क्षत-विक्षत शरीर को वीणा के हाथों में सौंप दिया और वीणा आरक्त नयन, अवरुद्ध कण्ठ अपनी साड़ी से उसके मुख का रक्त पोंछती-पोंछती इतना ही बोली—कुछ भी हो नीलम, तुम्हारी यह पूजा भगवान स्वीकार नहीं करेंगे। यह खण्डित पूजा है।

: ९ :

बेटे की मौत

जब वे अस्पताल से उसके बेटे की लाश लेकर लौटे तो रात पड़ गई थी। उसने अन्दर आकर कमरे में पड़े हुए पलंग को हटा दिया। जो बिस्तर था उसे धरती पर बिछाकर बोला—मेरे बेटे को यहां लिटा दो।

लाने वालों में से एक ने धीरे से कहा—पलंग क्यों हटा दिया तुमने ? उसी पर लिटाना ठीक रहता।

वह मुस्कराया—मां की छाती से बढ़कर बेटे के लिए और कौन-सा स्थान होगा।

अचरज से उन लोगों ने उसे देखा और फिर बिना एक शब्द बोले एक पवित्र और बहुमूल्य वस्तु की तरह लाश को धरती पर लिटा दिया। लिटा कर वे सब कई क्षण बुत की तरह खड़े रहे और वह अपने बेटे के वस्त्रों को ठीक करता रहा। वह बिलकुल शान्त और निर्द्वन्द्व था। धीरे-धीरे उसने लम्बी चादर को चारों ओर से खींचकर ठीक कर दिया जिससे बेटे का कोई अंग न दिखाई पड़े। फिर बिस्तर के मुड़े हुए कोने खोलने लगा। इसी समय एक व्यक्ति, जो अपेक्षाकृत युवा था, बोला—चाचा, मैं आपके पास ठहरूँगा।

उसने उसी गम्भीरता से कहा—नहीं ! आप सब जा सकते हैं मुझे डर नहीं लगता।

युवक मुस्कराया—डर की बात नहीं, चाचा। फिर भी मैं चाहता हूं.....

वह भी मुस्कराया—धन्यवाद ! परन्तु मैं चाहता हूं आप लोग मुझे अकेला छोड़ दें। मैं अंतिम बार उसके पास अकेला रहना चाहता हूं.....।

उन लोगों ने एक बार उसको देखा। उसके मुख पर अशान्ति का कोई लक्षण नहीं था। वह भयानक रूप से गम्भीर था। यह बुरा था, पर तो भी वे लोग बहस नहीं कर सकते थे, इसलिए वे एक-एक करके चुपचाप जाने लगे। सबसे पहले उसका पड़ौसी बिना बोले ही चला गया। वह कुछ कमज़ोर दिल का आदमी था। उसके आंसू रास्ता टटोल रहे थे। उसके बाद बूढ़ा अब्दुल्ला चलने को हुआ। उसने जाते हुए कहा—बाबू केदारनाथ ! सबेरे मैं आऊंगा। तब तक के लिए अलविदा, खुदा हाफिज़।

उसके जवाब में केदारनाथ ने मुस्करा कर हाथ उठाया और फिर चुपचाप लाश को देखने लगा। तीसरी बार रामनाथ अपने स्थान से हटा। उसने दर्द भरी आवाज़ में कहा—जीवन भर जिस सरकार की तुमने सेवा की, उसी ने क्षण भर में तुम्हारे निर्दोष बेटे को मार डाला।

केदारनाथ ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया, केवल उसकी मुद्रा कुछ कठोर हो गई। रामनाथ चला गया। उसी के साथ वह युवक भी रवाना हो गया। उनका देर तक यहां रहना खतरे से खाली नहीं था। क्षण भर वह उनकी ओर दृष्टि उठाये उनके कदमों की डूबती आवाज़ सुनता रहा; फिर किवाड़ बन्द करके बेटे के पास लौट आया। अब वह कमरे में अकेला था। उसका दिल टूट रहा था। उसके शरीर में एक गहरी सिहरन दौड़ रही थी। वह स्वयं अचरज कर रहा था—वह अब तक रोया क्यों नहीं ? कैसे सबके सामने इतनी आश्चर्यजनक दृढ़ता बनाये रख सका...? पर सब चले गये तो वह दृढ़ता टूटने लगी। उसका कलेजा उमड़ पड़ा। आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें फर्श पर टपकने

लगीं। यह तूफान की सूचना थी। बांध का एक छिद्र प्रलय की निशानी है। देखते-देखते उसकी हिचकियां बंध गईं। वह वहीं लाश के पास गिर पड़ा और सुबक-सुबक कर रोने लगा। सुबकियों के पीछे जो उत्तेजित विचार-धारा थी उसने उसे और भी बेबस कर दिया। उसका विश्वास परमात्मा के प्रति भी खण्डित हो चला। वह एक उच्च सरकारी नौकर था। उसका बेटा अभी अफसर बनने वाला था। उसने अपने जीवन में कभी भी राजनीति में भाग नहीं लिया था। उसे राजनीति से चिढ़ थी। वह अपने मित्र से मिलकर लौट रहा था, तभी उन मदांध गोरों ने उसे गोलियों से भून डाला। मूर्ख, कमीने! वे दोस्त-दुश्मन की तमीज नहीं कर सकते थे। वे हिन्दुस्तानी मात्र को नष्ट करना चाहते थे। वे···

इसी समय सहसा वह चौंक पड़ा। उसने गरदन को झटका दिया। वह विचारों की दुनिया में बहुत दूर चला गया था। उसने सुना, बाहर दरवाजे पर कोई पुकार रहा था।

वह अचकचाया—इस समय कौन!

एक कोमल आवाज़ आई—किवाड़ खोलो।

अन्धकार गहरा हो चला था। बाहर सड़क पर बिजली का प्रकाश तेज था और उसी प्रकाश में सैनिक राइफल थामे मार्च करते हुए आते और चले जाते। उसी आवाज से चिढ़ कर कुत्ते भूंकने लगते और सन्नाटा रो पड़ता। उसने डरते-डरते किवाड़ खोल दिये और अचरज से देखा—सामने एक लड़की खड़ी है।

क्षण भर वह उसे भौंचक देखता रहा, फिर यंत्रवत् बोला—जल्दी करो, अन्दर आ जाओ। लड़की अन्दर आगई। वह उसे पहिचानता था। वह अपनी मां के साथ उसके पड़ौस में रहती थी। उसका बाप पिछले साम्प्रदायिक दंगे में मारा गया था और तब से उसकी मां एक असहाया की भांति सूत कात कर या लिफाफे बना कर जीवन बिता

रही थी। इन मां-बेटी के बारे में अक्सर जो कुछ उसने सुना था वह बहुत अच्छा नहीं था···

लड़की बोली—चाचा, रोशनी नहीं करोगे ?

करता हूं बेटी—उसने कहा, और स्विच दबा दिया। कमरा जगमगा उठा। उसने देखा, लड़की बेहद गम्भीर है। आंखों में गहरी वेदना है और हाथों में एक कटोरदान।

लड़की ने बिना बोले चुपचाप कटोरदान का ढकना हटा दिया। उसमें कुछ फूल और घिसा हुआ चन्दन था। वह समझ न सका। लड़की बोली—मैं पूजा कर सकती हूं ?

किसकी पूजा.....?

इनकी ! लड़की ने लाश की ओर संकेत कर दिया।

बाबू केदारनाथ के नेत्र सजल हो आये। उनके मस्तिष्क में कई धूमिल प्रश्न उठे, परन्तु समय प्रश्नों का नहीं था। इसलिए उसने बेबस कहा—कर लो, बेटी।

तब वह लड़की लाश के पास बैठ गई। बड़ी आहिस्ता से उसने उसके मुख के ऊपर का कपड़ा हटा कर मस्तक पर चन्दन का टीका लगा दिया। फिर फूलों को छाती पर बखेर कर वह उठ खड़ी हुई। उसने कपड़े को फिर उसी तरह दबा दिया जिस तरह हवा लगने के डर से मां बेटे को या प्रेयसी प्रियतम को ढक देती है। उसके बाद वह पैरों के पास आई और चुपचाप उन्हें छूकर लौट चली। उसकी आंखें भर आई थीं और आंचल के छोर से उन्हें पोंछकर वह अपने को रोकने की भरसक चेष्टा कर रही थी। केदारनाथ ने इस मूक वेदना को देखा। उससे रहा नहीं गया। बोला—एक बात बताओगी बेटी ?

जी।

तुम इसको जानती थीं ?

जी। इन्हीं के कारण हम आज तक जिन्दा हैं।

क्या यह तुम्हारे पास जाता था।

जी.....।

लड़की कुछ अचकचाई। केदारनाथ के दिल को धक्का लगा। उसे उस लड़की पर क्रोध हो आया। यह दुष्टा यहां इस समय क्यों आई है? क्यों यह मरने के बाद उसके एक-मात्र बेटे को पाप में लथेड़ना चाहती है? क्यों...?

तभी लड़की फिर बोली—आपको दुख होता है शायद! पर हम लोगों के लिए वे क्या थे यह आप नहीं जानते। बाबा के मरने के बाद दुनिया में हमारे लिये अन्धेरा ही अन्धेरा था। हमने मरने का निश्चय कर लिया था। लेकिन अचानक एक दिन ये हमारे घर आये। बहुत देर तक मां से बातें करते रहे। इन्होंने कहा—मरना आसान है, जीना मुश्किल। इन्सान आसान काम के लिये नहीं है। उसे कठिनाई को आसान करना है।

मां बोली—तो क्या करूं?

जीओ।

कैसे?

मन में चाह पैदा करो। हाथों में शक्ति स्वयं आयेगी।

इनकी यही बात मेरे मन में चुभ गई थी और इसीलिए आज तक साधनों के अभाव में भी हम जी रहे हैं और जीते रहेंगे।

केदारनाथ का मन बेटे की मौत के दर्द से भरा होकर भी विचलित हो रहा था। उसके मन में इतने विचार उलझ रहे थे कि वह झुंझला उठा था। लेकिन सामने बेटे की लाश पड़ी थी। उस बेटे की जो शीघ्र अफसर बनने वाला था परन्तु सैनिकों की गोली खाकर प्राण दे चुका था। और यह बदनाम लड़की उसकी पूजा करने आई है। पूजा वही करता है जिसमें श्रद्धा है। श्रद्धा का कारण प्रेम है। तो यह लड़की उसके बेटे से प्रेम करती है? तभी...एक बात ओठों तक आ कर रह गई। वह चाह कर भी चुप रह गया। यद्यपि उसका लड़का मर चुका था तो भी वह उसके चरित्र की उज्ज्वलता पर धब्बा लगता

हुआ नहीं देख सकता था। उसे अपने बेटे पर नाज़ था। उसने कुछ कठोरता से कहा—तुम अब जा सकती हो, लड़की।

लड़की बोली—हां, मैं अब जाऊंगी चाचा। आप डरें नहीं। आपका पुत्र महामानव था। वह जब तक जीया, शान से जीया। जब मरा, शान से मरा। ऐसी शान से कि दुनिया उससे रश्क करती है।

केदारनाथ झुंझलाहट से भर चला था। उसने कहा—लड़की, तुम क्या बक रही हो मेरी समझ में नहीं आता। उसका किसी भी दल से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह धोखे का शिकार हुआ है।

लड़की सहसा मुस्करा उठी—चाचा! तुम्हारे बेटे को तुमसे ज्यादा मैं जानती हूं। उन्होंने जीवन में कभी धोखा नहीं खाया। वे जान-बूझ कर आग में कूदे थे।

केदारनाथ अचकचाया—क्या! तुम आखिर क्या कहना चाहती हो!

लड़की कुछ कहे द्वार पर फिर आहट हुई। वह बोली—कोई है, दरवाजा खोल दो चाचा।

कौन है?

किसी ने दरवाजा फिर थपथपाया। केदारनाथ हतबुद्धि-सा आगे बढ़ा और किवाड़ खोल दिये।

दो युवक अन्दर आकर खड़े हो गये। वे परम शान्त थे। उनके हाथ में दो राष्ट्रीय झण्डे थे। उन्होंने लड़की को देखा। एक जो अपेक्षाकृत युवक था बोला—बिन्दा! तुम यहां हो!

लड़की बोली—करफ्यू के कारण मैं जल्दी चली आई थी। कोई भय तो नहीं है?

नहीं।

दूसरे युवक ने आगे बढ़कर लाश को झण्डों से ढक दिया। फिर दोनों मिलकर उसे आहिस्ता-आहिस्ता ठीक करने लगे। केदारनाथ ने अचरज से यह सब देखा। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसने चकित विस्मत होकर कहा—आप लोग कौन हैं?

पहला युवक बोला—आप शायद साथी मोहन के पिता हैं ?

हां, वह मेरा बेटा था।

आप खुशकिस्मत हैं।

लेकिन आप लोग कौन हैं ?

हम·····?

हां·····।

बिन्दा ने आपको कुछ नहीं बताया ?

बिन्दा हँसकर बोल उठी—मैं बदनाम हूं। ये मेरा विश्वास नहीं कर सकते थे।

दूसरा युवक मुस्कराया—हम लोग केवल देशसेवक हैं। भारत की आजादी हमारा लक्ष्य है।

लेकिन मेरे बेटे से आपका क्या सम्बन्ध है ? आपको शायद गलत-फहमी हुई है। वह राजनीति से घृणा करता था। वह धोखे से मारा गया है। वह अफसर बनने वाला था।

पहले युवक ने केदारनाथ को परम शान्ति से देखा और कहा—मोहन हमारा नेता था।

नेता···?

जी।

लेकिन...

कोई फिकर नहीं। वे धोखे से नहीं मारे गये। उन्होंने एक उद्देश्य के लिये जान-बूझ कर प्राण दिये हैं।

लेकिन आप बताइये तो आप क्या कहना चाहते हैं।

पहला युवक बोला—कोई विशेष बात नहीं, महोदय। मोहन हमारा नेता था। उसने राष्ट्रीय प्रतीक की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राणों को तुच्छ समझा। उस रास्ते पर चलने वालों में जिसके सिर पर गांधी टोपी होती थी उसको गोरे सैनिक पकड़ लेते थे। फिर उनसे कहते—टोपी उतारो और उस पर थूको। प्राणों से जिन्हें मोह था वे ऐसा

करके चुपचाप आगे बढ़ जाते थे। जो निर्मोही थे वे टोपी उतारने से पहले प्राण दे देते थे। परन्तु जनता में इतना साहस नहीं था। उस दिन कई टोपियां गोरों सैनिकों के बूटों के नीचे कुचली गईं। टोपी देखने में गोल कपड़ा है परन्तु वह कपड़ा राष्ट्र की प्रतिष्ठा का प्रतीक है। अपनी प्रतिष्ठा पर गोरे के बूटों का आघात हमने सुना। हमारा खून खौल उठा। यद्यपि भयंकर आग सुलग रही थी, उसमें जाना मौत को गले लगाना था, लेकिन मोहन ने कोई परवाह नहीं की। वह दृढ़ता के साथ उस मार्ग पर चला गया। उसने प्राण दे दिये, पर टोपी नहीं उतारी। जिस समय मैंने लाश को उठाया था टोपी उसकी कमीज के नीचे थी.....।

केदारनाथ पागल हो रहा था। वह जानता था मोहन अपने एक मित्र के पास गया था। लौटते समय उसे गोली लगी। आज सन्ध्या को उसकी लाश उसने अस्पताल से प्राप्त की थी, और ये कहते हैं.....

उसने पूछा—आपने लाश को उठाया था ?

जी ! गोरे सैनिक न जाने कितनी लाशें गायब कर चुके हैं ? कल रात बिन्दा की सहायता से मैं उसे नाले से निकाल लाया था। उस सड़क पर डाल दिया था जहां से फौजी लारी उसे उठा कर अस्पताल पहुंचा आई। हम उसे घर लाना चाहते थे परन्तु चांदनी रात के कारण सम्भव न हो सका।

केदारनाथ की आंखों के आगे से एक परदा हटता जा रहा था। वह समझ नहीं पा रहा था, वह क्या कहे ? क्या करे ? वह जानता था मोहन उसका पुत्र है। उसमें विद्रोह की गन्ध भी नहीं आती। वह कम्पिटीशन के लिए जी-जान से तैयारी कर रहा था। लेकिन ये जो बागी हैं, जो सरकार के दुश्मन हैं, ये कहते हैं मोहन उनका नेता था; उस ने देश की प्रतिष्ठा के लिये हंसते-हंसते प्राणों का बलिदान किया है...।

इसी समय वे दोनों युवक उठे। बोले—चलो बिन्दा, अब चलें!

वे सब मुड़े; तभी केदारनाथ आगे बढ़ आया। द्रवित हो कर बोला—मेरे बच्चो! क्या सचमुच मोहन ने जान-बूझ कर प्राण दिये हैं। सैनिकों ने उसे धोखे से नहीं मारा?

नहीं।

वह कब से तुम्हारे साथ था?

वह हमारा साथी था—सदा का साथी।

केदारनाथ ने ठण्डी सांस भरी; आंखों में आंसू भर आये। बोला—तो उसने मुझे धोखा दिया। सदा धोखा दिया। वह समझता रहा मैं सरकार-परस्त हूं। मैं उसे आजादी की जंग में नहीं जाने दूंगा। उसने मुझे पापी समझा! मेरे बच्चो। तुम्हारे उस महामानव ने मुझे देशद्रोही और गद्दार समझा.....

कहते-कहते अधेड़ केदारनाथ की सिसकियां बंध गईं। उससे खड़ा नहीं रहा गया। वह बैठता-बैठता वहीं बेटे की लाश के पास लड़खड़ा-कर गिर पड़ा। बिन्दा घबरा कर दौड़ी; उसे संभालती संभालती बोली—नहीं, नहीं! चाचा! वे तुम्हें पापी नहीं समझते थे। वे तुम्हें बेहद प्यार करते थे।

बेशक—पहले युवक ने कहा—मोहन सदा तुम्हारी तारीफ करता था।

और दूसरा युवक बोला—युद्ध में जाने से पहले उसने मुझसे कहा था—मेरे पिता को अपना पिता समझना।

वह उठ बैठा। उसने आंखें पोंछते हुए कहा—अहा, मेरे बच्चो, तुम कहना चाहते हो वह गद्दार के साथ मुझे कायर भी समझता था। यह उसकी भूल थी। वह अगर देश के लिए मर सकता है तो मैं क्यों नहीं मर सकता? आखिर वह मेरा बेटा था, बेटा....।

और इतना कह कर केदारनाथ शान्त-मन सीधा खड़ा हो गया। बोला—अब तुम जा सकते हो मेरे बच्चो, मैं स्वस्थ हूं।

: १० :

हमें गिरानेवाले

बिहारी सबेरे उठा तो उसे सन्ध्यावाली बात भूली नहीं थी। उस समय पूरब से आकर प्रकाश दरख्तों की चोटियों पर चमक आया था और बड़े-बड़े महलों के छज्जों पर किरणें अठखेलियाँ करने लगी थीं, पर बिहारी की कोठरी अभी अंधेरे के आश्रय में थी। वह उदासी से भरा और अलसाया हुआ काली दीवारों की ओर ताक रहा था; लेकिन उसकी दृष्टि वहां रुकती नहीं थी। वह उस कालस को छेदकर रातवाली बात पर जा अटकती थी। वह हमारा नेता है। उसने हमारी सेवा का व्रत लेकर भरा-पूरा घर छोड़ा है। उसी ने कल सन्ध्या को सब आदमियों के सामने कहा था...।

बिहारी सिहर-सा उठा। उसने अपने शरीर का सारा बोझ एक हाथ पर टिका रखा था और वह एक टूटी खाट के झंगले में दबा पड़ा था। वह उस नेता के शब्द याद कर जैसे शक्ति से भर चला। उसकी आंखें चमक उठीं। एक नई चेतना पैरों से लेकर सिर तक उमड़ आई। वह बुदबुदा उठा—किसने कहा है तुम कमजोर हो? तुम्हारे कोई अधिकार नहीं? तुम्हें जीने का हक नहीं...?

किसने कहा...?—नेता ने फिर पूछा था।

लेकिन किसी ने सिसकारी नहीं भरी। सब की दृष्टि उस पर थी और उस दृष्टि में मानो उसकी सारी चेतना भरी हुई थी...।

वही नेता बोला—क्या उन्होंने कहा, जो ऐश्वर्य के साथ अठखेलियां

करते हैं, जो सम्पदा के स्वामी हैं; जो विलास की गोदी में पले हैं; बोलो...?

लेकिन वे लोग वाणी खो कर स्तब्ध, शान्त उसे देखते ही रहे। बोले नहीं...!

वही बोला था—तो क्या वे कहते हैं जिनके हाथ में सत्ता है, जो न्याय का नाटक करते हैं, या जो कानून की प्रसव-वेदना से पीड़ित होने का अभिनय करते हैं...?

अब भी वही सन्नाटा था। केवल उसी की आवाज गूंजती थी और उसी की सदा उसके कानों में आ टकराती थी।

वह बिना रुके बोलता रहा—पर मैं कहता हूं, वे तुम्हें कुछ भी नहीं कहते। वे कायर हैं। उन्हें क्षण-क्षण प्राणों का डर लगा रहता है। वे तुम्हें क्या कह सकते हैं ....?

और यहां आकर वह रुका, परन्तु क्षण भर बाद उसकी गहन गम्भीरवाणी फिर गूंज उठी—यह सच है वे तुम्हें कुछ नहीं कह सकते। यह तो तुम आप हो, जो अपने को नीचे गिराते जा रहे हो। अपने अधिकारों को आप ही छोड़कर कहते हो—हम इस योग्य नहीं हैं। तुम्हीं हो जो अपनी विद्या बुद्धि और शक्ति से इन्कार करते हो। तुम्हारे पास सब कुछ है और तुम कहते हो—हम गरीब, अज्ञानी और भूखे हैं....।

न जाने क्या हुआ; बिहारी लेटा था उठकर बैठ गया। कल सन्ध्या को वह चूं भी नहीं कर सका था, पर अब न जाने कहां से उमड़-घुमड़ कर विचार उसके दिमाग में भर आये—हम ही अपनी इस बुरी हालत के लिए जिम्मेवार हैं, हम....

नहीं, नहीं! क्या कोई जान-बूझ कर भी भूखों मरना चाहता है? क्या हम भूल रहे हैं? क्या हम जानते नहीं कि....

वह कातर हो उठा। उसके सामने एक नया दृश्य खिंच गया। सामने एक कोने में उसकी स्त्री लेटी थी। धुंधले अंधेरे ने उसके चेहरे

को बहुत कातर, दीन और भयानक बना दिया था। रात उसे पेट भर भोजन नहीं मिला था। उसकी बगल में पांच छः महीने का बच्चा छाती में मुंह दबाये लेटा था। वह मां की चूचियों को चूस रहा था; लेकिन उनमें दूध नहीं था। क्षण-क्षण में वह चीख उठता था। क्षण-क्षण में मा उसे परे ढकेल देती थी और सो जाने की व्यर्थ चेष्टा करती थी....

उसका दिल किसी विषाद से भर आया। एक थकी हुई नारी जो तांबे के एक पैसे पर बाज की तरह झपटती है, रुपया सामने देख कैसे कहेगी—मैं इसे नहीं लेती ? यह गरीबी और मुफलिसी की जीती जागती मूरत है और....और...।

वह चौंक पड़ा। उसने मालिक का घर देखा था। उसके सामने एक तसवीर सी उठने लगी। वह जागते हुए सपना देखने लगा—उसकी सुन्दर मालकिन अभी सो रही है। पलंग के पास छोटी मेज पर घड़ी टिक-टिक करे चली जा रही है। उसके पास क्रीम की सफेद बोतल, टूथ-पेस्ट, लिपस्टिक, और लवेण्डर की सुन्दर शीशियां हैं, जिनकी सुगन्ध से कमरा मँहक रहा है। पीछे स्टैण्ड पर सुन्दर और नई पोशाकें हैं और पलंग के नीचे ऊंची एड़ी के बूट रखे हैं....

कमरे की खुली खिड़की से आती हुई सुनहरी किरणें और सुबह की ठंडी हवा उसके जागरण की प्रतीक्षा में है। वह जाग आई। उसने अंगड़ाई लेकर खुले हुए बालों को जूड़े में बांध लिया। वह बहुत सुन्दर नहीं है, पर इन उपकरणों ने उसे मोहक बना दिया है....

और उसी समय नीले परदे को पीछे हटाकर नौकरानी अन्दर आगई। उसके हाथ में प्लेट है और प्लेट में सुबह का कलेवा—चाय, मक्खन और रोटी....

बिहारी देखता रहा—वह नौकरानी भी कितनी साफ धोती पहिने है। उसके होठ पान खाने से लाल हैं और मिस्सी लगाने से काली

धारियों के बीच में सफेद दांत चमक रहे हैं। उसके सांवले चेहरे पर लाल होठ, सफेद दांत कितने सुन्दर लगते हैं, कितने सुन्दर....

लेकिन सहसा बिहारी का स्वप्न भंग हो गया। क्षण भर में उसकी खयाली दुनिया के सुन्दर चेहरे न जाने कहां चले गये? वह सम्पन्न नारियां और उनका सुन्दर दंगला, बँगले के साथ का लॉन और टेनिस कोर्ट सब उसकी आंखों की दुनिया को धोखे में डाल कर गायब हो गये। उसने देखा वह अपनी काली कोठरी में टूटी खाट पर बैठा है। उसके पैरों के पास पट्टी पर सिर रखे उसकी पत्नी है। उसके गाल निचोड़े हुए नीबू की तरह हैं। आंखों के नीचे काली धारियां गहरी हो रही हैं। उसके नेत्रों में नारी की स्वाभाविक ममता माया के स्थान पर चिड़चिड़ाहट से भरी हुई क्रूरता है और वह कहती है—आज तू काम पर नहीं जायेगा?

काम पर—बिहारी चौंक सा उठता है।

हां काम पर! देख तो कितना दिन चढ़ आया है। आज मालूम होता है तू किसी नशे में पड़ा है।

बिहारी एकदम क्रोध से जल उठा—तू हुक्म चलाने वाली कौन होती है हरामजादी, वेश्वा? मैं आज काम पर नहीं जाऊंगा, भला!

नहीं जाता तो मत जा, पर कुत्ते की तरह चीख मत—उसने कहा और बाहर चली गई। बिहारी कह तो गया पर उसे लगा—उसे जाना जरूर है। वह उठा और बाहर आगया। बहुत से आदमी अभी काम पर जा रहे थे। वह भूखा-प्यासा उन्हीं में जा मिला। उदासी न जाने कहां चली गई? हंसते-बोलते वे सब अपने रोज के रास्ते पर बढ़ गये; पर बिहारी के दिमाग में यह बात बराबर घूमती रही—इस दुर्दशा के लिए क्या हम आप ही जिम्मेवार हैं? क्या हमने आप ही अपनी हत्या की है?

अपने बचपन में बिहारी स्कूल हो आया था, इसी से उस समजा में उसका आदर था और नेताओं की लिस्ट में उसका नाम भी आने

वाला था। मजदूर आन्दोलन जब जागृत होने लगा तो बिहारी अपनी यही अक्षर बुद्धि लेकर उसकी ओर आकर्षित हुआ था। आज तो वह खूब सोचना भी सीख गया है।

× × ×

सुबह जिस धुन में बिहारी गया था, सन्ध्या को उसी धुन में लौट आया। लेकिन वह खुश हो रहा था, जैसे उसका मन कहीं स्थिर शांति पा गया हो।

उसने अपनी स्त्री से कहा—तू सुनती है। आज जल्दी काम से निपट ले।

वह अचरज से बोली—आज क्या है ?

बिहारी ने कहा—आज बाजार चलेंगे। बच्चे को नया कुरता पहना लेना और समझी...

वह मुस्करा उठा। स्त्री कुछ नहीं समझी। बोली—कहीं से कुछ मिला है क्या ?

तू बक-बक मत कर। मैं कहता हूं कोई हमें क्या देगा ?

स्त्री को हंसी आ गई। वह चुप-चाप उठी और तैयारी में लग गई।

और एक घण्टा बाद।

बिहारी आगे-आगे जा रहा था और उसकी स्त्री बच्चे को लिये पीछे-पीछे थी। वह बड़े खुश थे और बड़ी व्यग्रता से एक-एक चीज को जांचते-परखते थे। बाजार में बड़ी चहल-पहल थी। और ऊंची-ऊंची अंग्रेजी फैशन की दुकानें और उनका चमकता हुआ सामान उनकी आंखों को चौंधिया रहा था। वे आज एक नई दुनिया में थे और समझ रहे थे, यह दुनिया अद्भुत होकर भी हमारी है।

स्त्री बोली—बड़ा कीमती सामान होगा।

हां ! रुपए से कम तो यहां कोई चीज नहीं है।

सच.....!

वे अब एक नई दुकान के नजदीक आ गये। सहसा एक आदमी चिल्ला उठा—अबे! उधर क्यों बढ़े जा रहे हो? क्या कुछ उठाने की सलाह है?

दूसरा बोला—सूरत तो चोर की है!

बिहारी चौंककर पीछे हट गया। उसे धक्का लगा। उसने चाहा कहे—तुमने कैसे जाना मैं चोर हूं। पर वह कुछ बोल न सका। क्षण-भर बाद वह इस बात को भूल गया और उसी तरह बच्चे को खिलाता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ गया। उसने अब बच्चे को अपनी गोद में ले लिया था और बार-बार उसे उछाल-उछाल कर हंस रहा था। अचरज से आने-जाने वाले लोग उसे देखते और हंस देते। वह हंसी, व्यंग और घृणा की हंसी थी और उसमें तिरस्कार भरा था, पर बिहारी और उसकी साथिन को इसका कुछ भी ख्याल नहीं था।

वह कह रहा था—यह बिस्कुट की दुकान है!

वहां रेशम बिकता है।

उधर दवा वाले की कितनी सुन्दर शीशियां हैं?

वे किताबें! कैसी सुनहरी, लाल, पीली...?

और वे धोतियां कैसी रंग-बिरंगी...?

ये ट्रंक बेग.....।

कि स्त्री बोल उठी—ये मिठाई कितनी अच्छी है?

जी करता है क्या?

हां, बच्चे के लिए ले लेते।

बिहारी ने आंट खोली। चार पैसे बंधे थे। दो पैसे लेकर वह दुकान पर गया।

एक मिठाई की ओर इशारा करके बोला—यह दे दो!

दुकानदार ने एक बार उसे सिर से पैर तक देखा और कहा—आगे जाओ भाई।

बिहारी चौंका-सा—क्यों···?

उन्होंने सुना नहीं और उसकी ओर देखा भी नहीं। वे एक नवागन्तुक दम्पति से बड़ी विनय-पूर्वक प्रार्थना करने में लगे थे!

बिहारी ने एक बार फिर कहा—दो पैसे की वह मिठाई दे दो भाई।

इस बार वे भाई क्रोध से जल उठे। उन्होंने बिहारी की ओर ऐसे देखा मानो भस्म कर देंगे। जो और नये व्यक्ति आये थे, वे बड़े जोर से हंस पड़े बोले—इस चुकन्दर को देखा आपने?

जी हां, दो पैसे की मिठाई खायेंगे!

और इसी बीच में नौकर ने आकर बिहारी को परे हटा दिया। उसके आत्मसम्मान को ठेस लगी। वह घायल होकर तड़प उठा। स्त्री बोली—चलो, आगे चलें! यह जगह हमारे लिए नहीं है।

वह खून का घूंट पीकर चल पड़ा। उसे बार-बार वे बातें याद आने लगीं—क्या हमने ही अपने-आप को नीचे गिराया है? हमने... नहीं नहीं...।

स्त्री बोल उठी—वह मन्दिर है। आओ भगवान के दर्शन करने चलें।

बिहारी को क्रोध आ रहा था—भगवान्!...वह हमारा नहीं है। उनका है।

नहीं!—वह बोली—मैं आज जरूर जाऊंगी।

अच्छा।

वे अन्दर जाने को आगे बढ़ गये। बहुत-से आदमी अन्दर आ-जा रहे थे। एक अजीब चहल-पहल थी। कदम-कदम पर सुन्दर-सुन्दर तसवीरें बनी थीं। महादेव, पार्वती, गणेश और उनके ऋषि मुनि...।

उनका हृदय श्रद्धा और भक्ति से उमड़-उमड़ पड़ा। वे बार-बार राम का नाम याद करने लगे। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने सबको प्रणाम किया। पुरानी सब बातें वे भूल गये। उस समय तो उन्होंने समझा, हमसे ज्यादा सुखी कोई भी नहीं है। इसी श्रद्धा में भीगे भीगे

वे दूसरे दरवाजे पर आ गये, तभी एक आदमी ने उन्हें रोक लिया—कहां जाते हो ?

भगवान के दर्शन करने के लिये ।

दक्षिणा है ।

स्त्री ने एक पैसा निकाला वह आदमी हंस पड़ा—भगवान के दर्शन.....।

स्त्री खिसियानी-सी रह गई ।

आदमी बोला—एक पैसे में भगवान के दर्शन नहीं हो सकते । बाहर जाओ ।

और वे चले गये । बिहारी क्रोध से कांपता आ रहा था । उसने स्त्री से कहा—तूने भगवान को देखा ।

स्त्री बोली—चलो घर चलें । हमें क्या यहां आना सोहता था ? हम इस योग (योग्य) नहीं हैं ।

योग ! योग क्यों नहीं हैं ? क्या हम आदमी नहीं हैं ? क्या हमारे जी नहीं है.....

वह क्रोध से कांप रहा था और उसका कदम शीघ्रता से उठ रहा था । वह नेता कहता था—हमने अपने हाथों हत्या की है । हम अपने को भूल रहे हैं, लेकिन ·· सहसा एक झटका लगा और उसने सुना—इठलाकर चलता है जैसे कोई नवाबजादा हो ·· ।

और साथ ही हंसी की फुरफुराहट....।

वह मुंह के बल गिरा था । उसकी आंखें मिच गई थीं । वह वैसे ही पड़ा रहना चाहता था, पर लगा किसी ने आकर उसे उठा लिया । उसकी आवाज बड़ी नरम थी और पूछ रहा था—चोट कहां लगी है ?

❀ ❀ ❀

धीरे-धीरे बिहारी ने आंखें खोलीं—वह एक कमरे में चारपाई पर पड़ा था । कमरा किसी ऊंची जाति वाले का था, साफ और खुला हुआ । ठण्डी हवा उसे लग रही थी । उसने कहा—मैं कहां हूं ?

उसकी स्त्री व्यग्रता से आगे बढ़ आई—तुम मोटर के धक्के से गिरे थे, तो ये बाबूजी दया करके उठा लाये। अब चोट कैसीहै भला ?

उसे और भी अचरज हुआ—मोटर ...चोट....बाबूजी....

उसके स्मृति-पट पर धुंधली-सी छाया पड़ने लगी। उसे याद आने लगा—नेता ने कहा था....

वह बाजार की सैर को निकला था.....

लोगों को उससे नफरत थी, वह मजदूर था.....।

उसे मोटर का धक्का लगा था .....।

उसका स्मृति-पट साफ हो गया। वह सारी स्थिति को समझ गया। वह उठ बैठा।

वह युवक जिसके शरीर पर खद्दर का कुरता था, जो करुणा दृष्टि से उसे ताक रहा था, बोल उठा—नहीं, नहीं, तुम उठो मत !

मैं उठूं नहीं—बिहारी बोल उठा। उसका शरीर थर-थर कांप रहा था। उसने कहा—तुमने, बाबूजी, तुमने मुझे क्यों उठाया ? मुझ पर दया क्यों की ? मुझे मर जाने क्यों नहीं दिया ?

और वह हांफने लगा .....!

युवक चकित होकर बोला—तुम क्या कह रहे हो ?

वह जोश में था—क्या कह रहा हूं ? बाबूजी ! आज मुझे मालूम हुआ है कि····कि.....

युवक और भी आश्चर्य से भर उठा। उसका दिमाग घूमने लगा।

बिहारी कहता रहा, हमें नीचे गिराने वाले हम नहीं हैं, तुम हो। तुम जो दया, परोपकार, सेवा और न जाने क्या क्या नाम लेकर हमें दबाते जा रहे हो ! हमें उठने ही नहीं देते ! हमें अपने पैरों पर खड़े ही नहीं होने देते .....।

वह इतने जोश में था कि आगे नहीं बोल सका। थककर उसका शरीर गिर पड़ता कि युवक ने संभाल लिया। धीरे-धीरे उसने उसे लिटा दिया और माथे का पसीना पोंछ डाला। सहसा बिहारी ने

उसे देखा। वह कांप उठा—तुम ! यह तुम हो बाबूजी !...

...तुमने ही तो कहा था, अपने को गिरानेवाले हम आप हैं लेकिन अब तुम हो...।

पर वह आगे न बोल सका, दृष्टि उठी अचरज से देखा—युवक की आंखें भर आई हैं और गरम-गरम पानी की कई बूंदें उसकी छाती पर टपक पड़ी हैं।

: ११ :

सुराज

झगड़ू मिश्र आज जब घर लौटे तो थके रहने के बावजूद भी प्रसन्न दिखाई देते थे। ड्योढ़ी से ही उन्होंने आवाज लगायी--अरे मातादीन ! क्या बात है ? डिबिया क्यों नहीं जलायी ?

अंधेरे में से मातादीन ने जवाब दिया—तेल नहीं मिला, काका !

नहीं मिला ! क्यों नहीं मिला ?'

साहू ने मना कर दिया।

मिश्रजी की आवाज सहसा तेज हो उठी। बोले—आज भी मना कर दिया ! क्यों रे ?

हां काका ! वे तो रोज़ मना करते हैं। आज क्या है ?

है क्यों नहीं। दद्दा के घर गया था। वहां दिल्ली से एक वैद्य आये हैं। लौंडे की सबेरे बुरी हालत थी, अब बुखार का नाम भी नहीं है, नामी वैद्य हैं। उन्होंने बताया है, दिल्ली की गद्दी पर अब कांग्रेसका राज्य है।

काका....।

हां, हां ! यह खुद वैद्यजी ने कहा है। उन्होंने खुद नेहरू को गद्दी पर बैठे देखा है। नेहरू काश्मीर का पण्डित है। हमसे छोटा है। मुदा विद्वान है, इसीसे गांधी बाबा ने उसे राजा बना दिया। उस दिन रामआसरे कह रहे थे—बस अब अपना राज हुआ और सब दुख-दरिद्र मिटे।

सो तो है ही, काका।

हां, सो तो है ही, पर स्यात् साहू को अभी पता नहीं लगा।

मिश्रजी तबतक अपने ठिकाने पर पहुँच गये थे। खटोले पर बैठ कर उन्होंने देखा—चूल्हे में जो आग बची है उसक चमकी कोठरी की दीवार पर पड़ रही है और आंगन का अंधकार और भी गहरा हो उठा है। बाहर से आये थे इसलिये आंखें कुछ भी नहीं देख पा रहीं, पर थोड़ी ही देर में उन्होंने देखा—वही कच्ची दीवारें, छप्पर की टूटी छतें, गन्दा और सीला फर्श, दो टूटे खटोले और दो चार टूटे-फूटे बरतन! एक खटोले पर धरती से चिपकी उनकी बीमार पत्नी लेटी थी। उसका रंग सियाह पड़ गया था, मांस सूख गया था, आंखें हड्डियों में धंस गई थीं, पर अभी सांस चलती थी। उसी की ओर देखकर मिश्रजी ने कहा—मातादीन की अम्मा! बड़े कमाल के वैद्य हैं। मातादीन जित्ती उमर है, पर सुभाव सोने जैसा है। भगवान उन्हें सुखी रखे! मैं जमीन पर बैठने लगा तो बस तड़प कर उठे—अरे अरे! मिश्रजी, क्या पाप करते हो? मैं तो तुम्हारा बालक हूं और फिर तुमतो गुरु हो। बस, मातादीन की अम्मा! मुझे खाट पर बिठाया और आप पैताने बैठे! मैं लाज से गड़ रहा था पर जिनकी आंखें हैं वे आदमी को पहिचानते हैं। कहते-कहते मिश्रजी की आंखें भर आयीं, उन्हें पोंछकर बोले—मैंने तुम्हारा हाल कहा तो झट नुस्खा लिख दिया और बताया बीमारी कम है, कमजोरी ज्यादा। कहना फिकर न करें। दवा देने से सब ठीक, होगा। बस, मैं कल अस्पताल जाऊंगा। दवा जरूर मिलेगी क्योंकि अब तो अपना राज है, भगवान सबकी सुनते हैं। कांग्रेसवालों ने त्याग क्या कम किया हैं? मुदा जब हम जेल गये तो तुम कह रही थीं, इतने बड़े राज से कैसे लड़ा जायगा। हाथी चिउंटी को मसल देगा, पर भगवान बड़े कारसाज हैं। चिउंटी अगर हाथी की सूंड़ में घुस जाय तो हाथी के प्राण निकल जायें हैं—वही हुआ। हाथी मर गया। आज जवाहरलाल राजा है। बस जो चाहेगा वही होगा।

मातादीन अबतक उठकर उनके पास जा बैठा था। बोला—काका, अब अँग्रेजों का क्या होगा ?

होगा क्या ? अपने घर जायंगे और उन्होंने खुद गांधी बाबा से कह दिया—बाबा ! अब तुम अपना राज सम्भालो। हम अपने घर जाते हैं। बस बाबा ने नेहरू को तिलक चढ़ा दिया।

और कहते कहते मिश्र जी हंसे। पत्नी की ओर देखकर कहा—कहीं हम दिल्ली होते तो तिलक का बुलावा हमें भी मिलता। ब्राह्मणों में मिश्र तो हम ही हैं, पर अभी क्या है। राजा कभी यहां भी आवेंगे, तभी हम उन्हें आशीष देंगे।

पत्नी की आंखें खाली थीं। वह निराशा और आशा से परे पहुंच चुकी थी। वह पति की वार्ता में कभी दिलचस्पी नहीं लेती थी, पर आज जाने उसे कैसा लगा। धीरे से बोली—अब दवा मिलेगी ?

हां हां, जरूर मिलेगी।

और तेल ?

जरूर।

और दियासलाई ?

अरे, अब तो सभी कुछ मिलेगा। सभी कुछ; कपड़ा भी ? चीनी भी और अब तुम भी जल्दी अच्छी हो जाओगी। देखना ये घर कैसे बन जायंगे ? अपना राज है, कुछ हंसी-खेल है ? वैद्यजी कह रहे थे—अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा पहनना—सबका इन्तजाम राज करेगा। स्कूल खुलेंगे, सड़कें बनेंगी और सौ बात की एक बात, जिन्दगी का मजा तो अब आयेगा। न कोई भूखा रहेगा, न नंगा, कोई किसी पर जुल्म-सितम नहीं करेगा। वैद्यजी क्या, गान्धी बाबा खुद अपने मुंह से कह रहे थे। जेल से छूटे तब की बात है। और यह सब उन्हीं का प्रताप है। सचमुच हमारे गांधी बाबा भगवान के अवतार हैं।

मातादीन और उसकी मां दोनों तन्मय होकर सुन रहे थे। गद्गद्

होकर मातादीन ने कहा—काका ! उस दिन चौपाल में मास्टर कह रहे थे, गांधी बाबा की मूरत मन्दिर में स्थापित हो गई है ।

पत्नी ने लम्बी सांस खींची, बोली—कौन जाने क्या बात है ? भगवान मेरी बात तो सुनते नहीं । उठा ले तो प्राण छूटे । मेरा तो यही सुराज है ।

मिश्रजी ने दयार्द्र आंखों से उसे देखा । कहा—कैसी बातें करती हो ! बहुत दुख भोगा है । सुख के दिन आ रहे हैं, तो भगवान् कैसे उठा लेंगे । वे अंतर्यामी हैं । घट-घट की जानते हैं, तभी तो इतनी बड़ी बीमारी आने पर तुम्हें जीता रखा है । तभी वैद्य इतनी दूर से आये हैं । अब तो बस नाव किनारे पर लगी समझो । चारों तरफ सुख ही सुख है ।

पत्नी का दिल गुदगुदाया पर वह उसी तरह बोली—मैं तो अब यही चाहती हूं, यह खुशखबरी सुनते-सुनते प्राण मुक्त हों । बस तुम सुखी रहो, मातादीन सुखी रहे । मुझे यही क्या कम सुख है ।

और इतना कहकर उसने मुंह फेर लिया । न जाने इन शब्दों में क्या था, मिश्रजी कुछ कहना चाहकर भी बोल न सके । मातादीन अपने कोने में जा पड़ा । उसे बड़ा अच्छा लग रहा था । उसकी कल्पना उड़ रही थी, पर कभी-कभी शंका पैदा हो जाती थी । वह सोचने लगता था—क्या यह सब सच है ?

मिश्रजी भी अपने खटोले पर उसी तरह लेट गये । चारों तरफ सन्नाटा था, पर आसमान में चांद निकल आया था, इसीलिए धुंधली-धुंधली रोशनी चुपचाप छप्पर में से छनकर उनके आसपास बिखर गई थी । मिश्रजी ने देखा तो मुस्कराये, सोचा—रोशनी की तरह अच्छे दिन भी बिना कहे आ जाते हैं । फिर सहसा करवट लेते-लेते जोर से कहा—मातादीन ! सवेरे जरा जल्दी आवाज दे देना । अस्पताल जाऊंगा ।

मातादीन ने धीरे से नींद में 'हूँ' कहा और फिर सन्नाटा छा गया ।

धीरे-धीरे सपनों की दुनिया ने उन पर कब्जा जमा लिया। तब तक जमाये रही, जब तक सूरज की किरणों ने उसके जाल को छिन्न-भिन्न नहीं कर दिया। दुनिया जागी, सपने सोये, किरणों ने अपना सफर जारी रखा। झगड़ू मिश्र ने अंगड़ाई ली, आंखें मसलीं, देखा—पत्नी सोयी पड़ी है, मातादीन खुर्राटे ले रहा है और दोनों पर मक्खियां भिनभिना रही हैं। उनके मन में रात की बात समा रही थी। जल्दी से उठे, बिना कुछ कहे गगरे से पानी उंडेला, मुंह चुपड़ा, कुली की और खड़ाऊं पहनकर बाहर निकल गये। जाते-जाते जेब का परचा संभाला, फिर ध्यान आया—उन्हें पांच मील जाना है इसलिए खड़ाऊं निकाल दी। बाहर दिन चमक रहा था, पक्षी चहक रहे थे और आदमी आने-जाने लगे थे। उन्हीं का प्रणाम लेते, आशीष देते मिश्रजी आगे बढ़े। गांव पीछे रह गया। गांव क्या था,-बीस पच्चीस झोंपड़ियां थीं और उनमें वे लोग बसते थे, जिन्होंने शायद अब तक रेल के दर्शन नहीं किये थे। वे बीसवीं सदी की हवा में सांस लेते थे, परन्तु उनका जीवन उन्नीसवीं सदी का था। वहां दो-दो तीन-तीन मीलके फासले पर ऐसे ही गांव बसे थे। उन्हीं के बीच में एक बड़ी बस्ती थी। जिसमें डाकघर, एक छोटा अस्पताल, स्कूल, चौकी और एक छोटा-सा बाजार था। स्कूल में एक साप्ताहिक अखबार आता था। इसीलिए वहां यह खबर फैल चुकी थी कि अब दिल्ली में कांग्रेस का राज स्थापित हो चुका है। भंगी से लेकर भरोसे साहू तक सभी खुश थे और समझते थे,चलो विपत्ति के दिन बीत गये।

साहू तो इतने खुश हुए कि सीधे अस्पताल पहुंचे। डाक्टर ने देखते ही कहा—साहूजी अब तो आपका राज आ गया है।

साहू खिलखिलाकर हंसे। बोले—वह तो आना ही था डाक्टरजी। परमात्मा के घर देर है, पर अंधेर नहीं। हिरणाकुश, रावण और कंस सभी का एक दिन अन्त आया था।

जी हां, पाप का घड़ा फूटता ही है।

हां, जरूर फूटता है। यह तो लोग बेवकूफ हैं जो घबरा जाते हैं। मैंने तो कह दिया, अंग्रेज और कंस की राशि एक है। इसका एकदिन अंत होगा, और हुआ।

और फिर धीरे-से बोले—तुमसे क्या छिपा है। मैंने कम त्याग नहीं किया। जेल तो मैं गया नहीं। सच बात है सब-कुछ छोड़ा जा सकता है, पर दीन-धर्म नहीं छोड़ा जा सकता और फिर सारा व्यापार पट हो जाता। पर मैंने कह दिया था—रुपया जितना चाहो लेलो। बिना रुपये के भी काम न चले। और आम खाने हैं या पेड़ गिनने। तुम लड़ो, मैं थैली लिए पीछे हूं। डाक्टर ने सिर हिलाया—जी साहूजी! बात आपने लाख टके की कही। लड़ाई में सभी कुछ चाहिए, तन भी, मन भी और धन भी। एक न हो तो तोबा बोल जाय।

साहू ने डाक्टर की जांघ को जोर से थपथपाया और कहा—अजी एक दम बोल जाय। तोबा क्या है, टें बोल जाय। पैसा है ही ऐसी चीज। हो तो नचावे, न हो तो नचावे। खैर, अब वे दिन गये। सब कुछ ठीक ही होगा और देखो अब तुम जरा भी मत डरना। सब अपने ही हैं। और हां डाक्टर साहब! घर में बड़ी खांसी है, बच्चे को बुखार चढ़ जाता है। मुझे भी तुम जानो, अब तब पेट में दर्द उठा करता है।

डाक्टर शीघ्रता से बोल उठा—तो क्या हुआ? दवा आपकी ही है। मैं भी आपका ही हूं। जब जो चाहिए, कहला भेजिए, पर जरा ये लोग बहुत तंग करते हैं। दवा के मारे तो नाक में दम है।

साहू हंसे—अरे डाक्टर! तुम जानते नहीं। लोगों का काम ही तंग करना है। उन्हें दो तो तंग करेंगे, न दो तो तंग करेंगे, तुम अपना काम करे जाओ। अरे भाई, वजीर आयेंगे, तो हमसे ही पूछेंगे, फिर हम देख लेंगे। आखिर तुम हमें दवा देते हो। हम अहसान-फरामोश क्यों होंगे?

डाक्टर कृत्यकृत्य हुआ और जल्दी-जल्दी दवा बांधने लगा। खांसी बुखार, पेट-दर्द, आंख-दर्द, कान-दर्द, फोड़े-फुन्सी सभी की दवा उसने

तैयार की। कर चुका तो नौकर के हाथ साहू की दुकान पर पहुंचा दी। साहू कहते गये—अगर तेल, चीनी, चावल चाहिए, तो मंगवा लेना।

डाक्टर ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और वे वहां से सीधे डाकखाने पहुंचे। बाबू ने देखा तो उचक कर उठा, दांत निपोड़े और फिर हाथ जोड़कर कहा—आइये, आइये, सेठजी! बधाई! अब तो आपके दिन जागे।

साहू हंसे—सो तो जागने ही थे, जरा वक्त की बात थी। वरना रात के बाद दिन का नियम क्या कभी टूटा है?

जी हां! सो तो है ही, पर फिर भी आप लोगों ने तपस्या क्या कम की थी।

अरे हमारी क्या तपस्या? तपस्या तो उन्होंने की, जो खप गये, पर आह तक नहीं की। सोच रहा हूं, उनके नाम पर गांवों के बीचोबीच एक स्मारक बनवादूं।

बाबू गद्गद् हो उठा। बोला—सेठजी! आप तो बस आप ही हैं। आप ऐसे काम न करेंगे तो कौन करेगा? आप सचमुच गरीबनेवाज हैं।

साहू अब नहीं हंसे। गम्भीर होकर बोले—बाबू साहब, कोई बात हो तो कहियेगा। सब अपने ही आदमी हैं।

बाबू ने हाथ जोड़े—जी हां! आपकी सब कृपा है पर.....।

हां-हां, कहो।

किसी से कहकर मेरी बदली शहर की करा दीजिए।

अच्छी बात है, कह दूंगा। मामूली बात है। हां, जरा देखना कार्ड कितने हैं?

लगभग सौ होंगे।

तो फिर देदो।

सभी?

हां...।

मैं कहता था, दीनबन्धु पाठक को भी कुछ देना है।

साहू क्षण भर रुके और बोले----अच्छा ! सत्तर देदो, तीस उसे दे देना। और फिर पैसे गिनकर साहू आगे बढ़े। बाबू दीनबन्धु की राह देखने लगा। उनके लिए पूरे सत्तर कार्ड उसने बचा लिये थे।

❀ ❀ ❀

झगड़ू मिश्र जब अस्पताल पहुंचे तो काफी दिन चढ़ आया था। भीड़ भी काफी थी और भीड़ में सदा की तरह उत्तेजना थी। लोग दवा मांगते थे और डाक्टर कहता था—अस्पताल में दवा नहीं है। भरोसे साहू के पास हो सकती है। मरीज जानते थे, भरोसे साहू बिना पैसा लिए दवा नहीं देते, इसीसे कहते—

क्यों नहीं है ?

नहीं है।

आती तो है ?

आती है और खर्च हो जाती है। मरीज क्या कम हैं ? जाओ भागो।

डाक्टर क्रुद्ध होता; मरीज गिड़गिड़ाते—डाक्टर साहब, मेरा भाई बुखार से बेहोश पड़ा है। डाक्टर बाबू, मैं गरीब हूं, मेरी मां मर रही है—डाक्टर, मेरा बच्चा तड़प रहा है।

डाक्टर समदर्शी की तरह एक जवाब दे रहा था—मैं क्या करूं ? दवा नहीं है। भरोसे साहू से या दीनबन्धु पाठक से पूछो। शायद वे कुछ मदद कर सकें। ठीक इसी समय सबको पीछे ढकेलते हुए झगड़ू मिश्र ने वहां प्रवेश किया। वे सीधे डाक्टर के पास जाकर बोले—डाक्टर साहब ! लीजिए यह दवा का परचा है। दिल्ली से बहुत बड़े वैद्य आये हैं। उन्होंने मेरी घरवाली के लिए लिखा है। जरा जल्दी बंधवा दीजिए। अब तो भाई, हमारा राज आ गया है। खूब दवा आती होगी।

डाक्टर ने एक बार तो मिश्रजी को ऐसे देखा जैसे भेड़ों के गिरोह में भेड़िया आ घुसा हो, फिर मन ही मन मुस्करा कर गम्भीरता से

परचा देखा और कहा—मिश्रजी यह दवा तो खत्म हो गई।

खत्म हो गई ?

जी हां।

कब आई थी ?

डाक्टर अब अकड़ा, कहा—आपको मतलब ?

मिश्रजी भी तेज थे। बोले—हां ! मुझे मतलब है। मेरी घरवाली मरने को पड़ी है।

डाक्टर ने देखा आदमी दमदार है। जरा समझाकर कहा—मिश्रजी, आप तो खामखा नाराज होते हैं। दवा होती तो मैं क्यों मना करता। मुझे क्या उसका अचार डालना है। देखो तो सब-कुछ खाली पड़ा है।

मिश्रजी ने एक बार चारों ओर देखा, फिर सांस खींचकर बोले—पहले तुम कहा करते थे अंग्रेज राज बुरा है, जुल्म करता है, पर अब तो अपना राज है। अब भी दवा नहीं आती ?

डाक्टर बोला—देख लीजिये.....

तभी पीछे से एक मरीज बोल उठा—मिसिरजी, दवा तो बहुत आई है पर.....

डाक्टर चीखा—चले जाओ यहां से !

मरीज हंसा—जाना तो सबको है, डाक्टर साहब ! आपको भी, भरोसे साहू और दीनबन्धु पाठक को भी, पर...

पर के बच्चे...।

मिश्रजी पुनः तड़प उठे—डाक्टर साहब ! गाली मत देना। वह ठीक कह रहा है। अब अंग्रेज का राज नहीं है, हमारा राज है। हम राज के लिए जेल गये हैं, मरे हैं। हम देखते हैं दवा कैसे नहीं मिलती ? हम अभी सरकार को लिखेंगे।

और कहकर मिश्रजी शीघ्रता से डाकखाने की ओर बढ़े। तब क्रोध से उनका चेहरा तमतमा उठा था। ओठ कांप रहे थे और चाल में तेजी

भर गई थी। डाक बाबू से उन्होंने तेजी से कहा—बाबू साहब ! एक कार्ड दीजिए।

बाबू ने उसी तरह काम करते-करते जवाब दिया—कार्ड नहीं हैं।

नहीं हैं।

हां, खत्म हो गये।

कब आये थे ?

कुछ पता नहीं।

बाबूजी आप हमेशा इसी तरह की बातें करते हैं। हमें बहुत जरूरी खत लिखना है।

बाबू ने कहा—जरूरी लिखना है, तो बाजार में पूछ देखो। मेरे पास नहीं है।

मिश्रजी का पारा फिर चढ़ा। अकड़कर बोले—बाबू साहब, जमाना बदल गया है। अब राज हमारा है।

बाबू हँसा—राज तुम्हारा है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि तुम हमें खा जाओगे। राज जैसा तुम्हारा वैसा हमारा।

मिश्रजी अब आपे में नहीं रहे। चीखकर बोले—हां बाबू साहब, हम जुल्मी को खा जायेंगे। हमारे राज में तुम भरोसे साहू से मिलकर दो पैसे का कार्ड चार पैसे में नहीं बेच सकोगे। समझे, मैं...

बात काटकर बाबू ने धीरे से कहा—मिश्रजी, भरोसे साहू कांग्रेस के दुश्मन नहीं हैं। वे हमेशा उसे पैसा देते रहे हैं। उनसे जाकर लड़िये।

तमाचा करारा था। मिश्रजी तड़प उठे। उन्होंने एक बार बाबू को देखा और लौट पड़े। उनके सामने वही रास्ता था, जिससे होकर वे आये थे। उनका मन एक अजीब विषाद, एक अजीब दर्द से भरा हुआ था। वे न सोच सकते थे, न बोल सकते थे। बस वे चल सकते थे और वे चल रहे थे। उन्हें पता नहीं कब खेत पीछे रहे, कब कुआं छूटा, कब वे अपने गांव में घुसे। वे तो तभी जागे, जब मातादीन ने

उन्हें व्यग्रता से पुकारा—काका-काका, दवा लाये ?

मिश्रजी चौंके—मातादीन··· !

हां, काका ! दवा लाये ? अम्मा की हालत बहुत खराब है।

कहते-कहते जवान मातादीन सुबक उठा। उसकी ओर दयार्द्र नेत्रों से देखकर मिश्रजी ने कहा—बेटे ! अब तुम्हारी मां को दवा देने वाला इस धरती पर कोई नहीं है। अब तो भगवान ही उसकी दवा करेंगे। वे बड़े दयावान हैं।

मातादीन ने अचरज और भय से अपने काका को देखा। आज से पहले वे कभी इतने गम्भीर नहीं हुए थे। वह डर गया, पर मिश्र जी न डरे, न कांपे ! सीधे पत्नी की खाट के पास पहुँचे। देखा वक्त आ पहुँचा है। आंखें उन्हीं की राह देख रही हैं। धीरे-धीरे उसका माथा छुआ और बोले—तुम ठीक कहती हो। तुम्हें दवा की जरूरत नहीं है, भगवान ने तुम्हें बुलाया है। वे बड़े दयालु हैं। तुम्हें खुशी होनी चाहिए। तुम आजाद हिन्दुस्तान में प्राण तज रही हो···।

कहते-कहते मिश्रजी की मुद्रा कठोर हो उठी, आंखों में क्रोध उमड़ आया, वाणी कड़ुवाहट से भर आई। चिनचिनाकर बोले—आजाद हिन्दुस्तान, कमीने कहीं के ! थू···!

और ठीक इसी समय एक हाथ से पति का हाथ थामे और दूसरे से पुत्र का सिर सहलाती हुई मिश्रजी की पत्नी ने दवा के अभाव में, आजाद हिन्दुस्तान की धरती पर आखिरी हिचकी ली। उसके प्राण मुक्त हो गये और मातादीन उसके पैर पकड़कर चीख उठा—मां, ओ मां···!

Kailash Ch. Chandra

: १२ :

धरोहर

केवल कुछ महीने पुरानी बात है, पर जैसे सदियाँ बीत गई हों, जैसे असंख्य वर्षों की सीमा पार कर वह बात बहुत धीमा, अति धीमा स्वर लिये कान में गुनगुना गयी हो—अरी पगली ! कितनी बार कहा, मत चिल्लाया कर इन बच्चों पर। इन्हें मत हर वक्त झिड़का कर। कौन जाने बड़े हो कर ये क्या हों ? देशबन्धु, गान्धी, रामकृष्ण, विवेकानन्द ये सब इस धरती पर, मां का पेट चीर कर ही तो निकले थे। कौन जाने उन्हीं की तरह हमारे बच्चे भी.....?.

तब वह चूल्हे पर रखे भात को करछी से हिलाकर देख रही थी और आंगन में तीन वर्ष की लावण्य दुधमुंहे चितरंजन को पटक कर 'भूख लगी है' ऐसा कहकर रोने लगी थी। बालक गला फाड़कर चीख उठा था। मृणाल के तन-बदन में आग लग गयी। क्रुद्ध, पसीने से तर चिल्ला उठी—राक्षसों ने जान खा डाली ! मौत भी तो नहीं आती इन्हें। कुएं से पेट में सब समा जाता है, कभी आग नहीं बुझती। मुझे क्यों नहीं खा डालते, ना बाबा ! ऐसी भी राक्षसी भूख क्या ? अभागे, भाग्य भी ऐसा लेकर आये हैं देश में अन्न का दाना भी नहीं मिल रहा है.....।

तभी बाहर से आ गये नलिन बाबू। बगल में छाता था, हाथों में तरकारी और दो आम। कोलाहल देखकर क्रोध नहीं आया, बल्कि मुस्करा कर लावण्य को गोद में उठा लिया, चितरंजन को पुचकारा—

अरे, अरे, इतना भी रोते हैं क्या ? अभी चुप हो जाओ, देखो ! क्या लाया हूं ? आम । आम खाओगे ? हां हां ! तुम ही खाओगे ! अच्छा, लावण्य ! छुरी तो ले आना जरा ।

लावण्य का रोना तो बाबू के हाथ में आम देखकर ही रुक गया था, पर बालक चितरंजन रोये जा रहा था। उसे उठाकर दोनों हाथों के झूले में झुलाना शुरू किया और साथ ही साथ गुनगुनाने लगे—सो जा, सो जा, राजदुलारे ! और फिर पत्नी के पास आकर कहा—सुनती हो, बच्चे का पालना बड़ा कठिन है। तभी तो इतना बड़ा, नर-नारियों का देश गुलाम पड़ा है। बचपन में ही सबकी आत्मा कुचल दी जाती है। कोई समझता ही नहीं। तुम्हें कितनी बार समझाया, पर व्यर्थ !

मृणाल बैठी थी, खड़ी हो गई, तबतक झुंझलाहट उसकी दूर हो चुकी थी। वह लज्जित-सी बोली—कोशिश तो करती हूं पर कैसे करूं ? कभी-कभी जी दुखी हो उठता है।

हां, हां—नलिन ने कहा और हंसे—सो तो जानता हूं मृणाल ! पर सोचो तो एक दिन, बहुत दिन बाद, हमारा चितरंजन बंगाल का दूसरा देशबंधु हो तो कितना अच्छा हो……?

मृणाल मुस्कराई और बोली—बहुत बड़े घर में जन्म लिया था उन्होंने। इनके ऐसे भाग्य कहां ?

बड़े-छोटे घर से क्या होता है पगली—नलिन ने कहा—होता है शिक्षा और लालन-पालन से। प्यार से समझाना एक बात है। लात, घूंसे या लकड़ी का चैला उठाकर मार देना दूसरी बात है।

मृणाल इस बार खिलखिला पड़ी। चितरंजन को गोद में ले लिया और छाती उसके मुंह में देती हुई बोली—नहीं, नहीं, मैं कभी नहीं मारूंगी इन्हें। धमकाऊंगी भी नहीं……।

और आज उसी घर में बैठी-बैठी मृणाल उन बातों को सोचती है और सुबक-सुबक कर, हिचकी बांधकर रोती है। रोने का कारण है।

बीते कल की सन्ध्या ने उसके जीवन की दशा एकदम पलट दी। उसे आसमान से जमीन पर ला पटका। नलिन जो महाकाल और महायुद्ध की विपता का मारा एक माह से ज्वर में पड़ा था सदा के लिए उन्हें छोड़कर चला गया।

सुनती हो—उसने मरते-मरते कहा था—मैं जा रहा हूं। मैं इस महाकाल से अपने को बचा न सका, पर मैं कहता हूं तुम अपने को बचाना। अपने लिए नहीं अपने बच्चों के लिए।

मृणाल,भोली मृणाल सुबक-सुबक कर रोई,बोल न निकला। केवल हाथ छाती पर रख दिया। धीमे-धीमे अटक-अटक कर नलिन फिर बोला—रोती है ? ठीक है, रोने का अवसर तो है, पर समझले हमारे ऊपर एक जिम्मेदारी है। उसे तो निभाना ही है। देश के दो बच्चे हमें पालने हैं। यह लड़ाई, यह महामारी अब खतम होने को है। बंगाल की स्वर्णभूमि अब फिर सोना उगलेगी। मेरी बदकिस्मती ! मैं यह सब न देख सकूंगा पर तू देखेगी। इसलिए रो मत। सबर कर, अपने शरीर को देख, उसे छीजने मत देना। नहीं तो; नहीं तो चितरंजन भूखा ही·····।

आगे उससे बोला नहीं गया। गला रुंधने लगा। सिर एक ओर को लुढ़क गया। आंखें खुली की खुली रह गईं। उसने हिचकी ली, अंतिम हिचकी·····मृणाल ने देखा,तो एकदम चीत्कार कर उठी—हाय स्वामी ! तुम कहां चले ? बोलो तो ! मैं अब क्या करूंगी ? हाय····· लेकिन उससे रोया भी नहीं गया। बेहोश होकर एक ओर लुढ़कने वाली थी कि पड़ौस की एक लड़की वहां आ गई—भाभी, भाभी ! क्या हुआ री ?

उसने देखा चीत्कार एकदम बन्द है। नलिन खाट पर लुढ़का पड़ा है, मृणाल जमीन पर। लड़की एकदम घबरा गई—भइया ! छोटे भइया ! भाभी ! भाभी ! क्या हुआ जी ?

लेकिन कोई नहीं बोला। दौड़ी-दौड़ी बाहर गई। जरा-सी देर में

पांच-सात नर-नारी आये। सिर हिला-हिलाकर उन्होंने कहा—नलिन के प्राण मुक्त हो गये! जीर्ण कंकाल में कोई चेतना नहीं है!

और भाभी·····?

मूर्छा है।

और वे सब काठ के ठूंठ की तरह निश्चल खड़े-खड़े एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। तभी दोनों बच्चों को थामे एक प्रौढ़ा ने वहां प्रवेश किया। तब अंधेरा बढ़ा आ रहा था। उसने जो यह दृश्य देखा तो घबरा गई—मृणाल, बहू।

—मूर्छित है।

—नलिन·····?

—बोल रे! नलिन को क्या हुआ? नलिन, छोटे भइया·····!

—भूख उसे खा गई, दीदी।

प्रौढ़ा की हठात् चीख निकल गई। पीछे दीवाल न होती तो शायद वह धरती पर ढह पड़ती। उसके हाथ में तीन पुड़ियां थीं, वे फर्श पर बिखर गईं। लावण्य मां के पास आकर रोने लगी। बालक भी गोद में 'मां' 'मां' करके मचल गया। युवती के उपचार और बच्चों के स्वर से जागरित होकर मृणाल उठ बैठी। आंखें फाड़-फाड़ कर उसने सबको देखा। फिर सहसा बांध टूट गया—दीदी, दीदी, बताओ तो कहां गये तुम्हारे छोटे भइया? कैसे होगा अब? मैं कहां जाऊंगी? यह महाकाल यह महायुद्ध, क्या ये कभी समाप्त नहीं होंगे क्या?

लेकिन उसके प्रश्नों का जवाब कौन देता, और क्या देता? सभी तो एक गहरे अवसाद, एक गहरी भूख से भरे पड़े थे। उनकी सूरत मानवता का उपहास करती थी, पर कुछ थे जिनकी समझ पर भूख की दीमक नहीं लगी थी। वे बोले—यह चीत्कार अब बन्द करो! कौन सुनेगा! उठो और शरीर की मुक्ति का प्रबन्ध करो।

नलिन की आत्मा मुक्त हुई और शरीर भी मुक्त हो गया। घर में जो भी कपड़ा मिल सका उसी में लपेट कर आग लगा दी गई और

जरा-सी देर में कुछ हड्डियों को छोड़कर सब शून्य में विलीन हो गया, लेकिन उसकी याद, उसकी बातें, उसका काम, इन सबको शून्य भी नहीं लील सका। मृणाल का कंकाल जिन्दा है। उसका दिल टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है। पर प्राण चिपके हैं। हत-भागिनी लावण्य मांड पी-पीकर जिये जा रही है। छाती का मांस चाब-चाब कर चितरंजन भी आयु बढ़ाये जा रहा है यद्यपि पतझड़ की शाखा की तरह उसका सुन्दर मुखड़ा कान्तिहीन हो गया है।

ये मर क्यों नहीं जाते—मृणाल कई बार दुःखी होकर सोच बैठती है और सोचकर कांपने लगती है। कोई चुपके से कान में कह जाताहै—कौन जाने बड़े होकर ये महान् पुरुष हों? इनके नाम की जय बोली जाय।

यही सोचकर एक दिन उसने दीदी से कहा—दीदी! तुम्हारे छोटे भइया ने अपने बच्चों के लिए प्राण तज दिये।

दीदी बोली—बच्चों के लिए सारी दुनिया जीती और मरती है।

—न-न दीदी! यह बात नहीं। वे कहते रहे, ये क्या हमारे बच्चे हैं। देश की धरोहर हैं और धरोहर का मान प्राण से ज्यादा होता है। दईमारे अकाल ने सोने के देश को राख बना दिया। कहते थे। हमारे देश वाले हैं, जो मुख का ग्रास छीनकर तिजोरी में बन्द कर रहे हैं। सच, क्या वे सोना खाते हैं। वह भी एक दिन मिट्टी बनेगा, पर तबतक सारे का सारा देश मिट्टी बन चुकेगा।

दार्शनिक-सी दीदी बोली—अरी पगली मिट्टी का खेल ही तो है यह सब!

जानती हूं दीदी। मिट्टी का खेल है सब। मिट्टी का घर है, मिट्टी से ही अन्न उपजता है। पर दीदी उस मिट्टी का सोना बनाकर क्या जीना हो सकेगा।

दीदी प्रभावित हुई। बोली—तू ठीक कहती है, इसी सोने ने मौत को बुलाया है। हाय, किस तरह धरती लाशों से पटती जा रही है। जो जिन्दा हैं वे शहर भागे जा रहे हैं।

मृणाल चौंकी—शहर ?

—हां ! कहते हैं वहां भूख नहीं है । सबको खाने को मिलता है ।

मृणाल की आंखें चमकीं—सच क्या दीदी, शहर में खाने को मिलता है ?

—हां ! सब यही कहते हैं । खैरात बंटती है वहां ? झुण्ड के झुण्ड लोग घर बार छोड़कर भागे जा रहे हैं, पर सब क्या वहां पहुंचते होंगे । कंकाल भी अच्छे होते हैं । देखकर डर लगता है जैसे दीमक खा गयी हो । हाय न जाने किस जन्म के पाप उदय हुए हैं इस देश में ।

मृणाल ने कहा—दीदी । पाप की कौन जाने ! पर यह भूख भी क्या परमात्मा ने भेजी है । आदमी आदमी को खाता है पर दीदी... ।

कहती कहती हिचक गयी । दीदी ने देखा—कंकाल से उसकी हालत अच्छी नहीं है । पर न जाने कौन आशा प्राण अटकाये है । बोली—कहती कहती रुक क्यों गयी ?

—कहती थी मैं भी शहर जाऊं । चितरंजन को देखो सूखता जा रहा है । बड़ी आशा थी इस पर उनकी, इसे तो जिलाना ही होगा ।

दीदी ने उसे फिर देखा—तू चली जायगी अकेली ?

मृणाल बोली—क्यों न जाऊंगी दीदी ! सभी तो जा रहे हैं । लावण्य को तुम रख लेना । कुछ दिन बाद लौट आऊंगी ।

—लेकिन मृणाल ! शहर क्या पास है । सब तो पहुंच भी नहीं पाते । रास्ते में कहते हैं लाशों के ढेर लगे हैं और फिर तू स्त्री है, अकेली है ।

मृणाल एक जीर्ण हंसी-हंसी, जिसने उसके रूखे मुख को और भी दयनीय बना दिया । बोली—स्त्री हूं तो क्या ? अब मुझ में है ही क्या जो कोई मांगेगा । इसी के लिए दो कौर मुंह में दे लेती हूं । तुम्हारे छोटे भइया कहते रहे—तू न खायेगी तो चितरंजन को क्या दूध मिलेगा ? कितनी बेबस होती हैं स्त्रियां दीदी ! अपने लिए वे कुछ भी नहीं कर सकतीं । खायेंगी सन्तान के लिए, पहनेंगी स्वामी के लिए । इसीलिए

चितरंजन के लिए शहर जाऊंगी। वह जियेगा, देश का भला होगा, उनकी आत्मा प्रसन्न होगी।

और कहते कहते मृणाल इतनी प्रसन्नता से उमड़ी कि दीदी अचरज से उसे देखती ही रह गयी। मना करने का साहस नहीं रहा और मना करती भी किस बूते पर। गांव में अन्न का दाना भी नहीं था। बोली—तो तू जायेगी। अच्छा। पर एक बात है संभल कर जाना, शहर का नाम बुरा है। न जाने क्या क्या है वहां, घोड़ा-गाड़ी, बिजली-गाड़ी, फौज-गाड़ी और आदमी ही क्या थोड़े हैं। दम घोटनेवाली हवा है और भूखे वे भी हैं, खाने की भूख नहीं है, तो अस्मत की भूख है। मां-बहिन शहर में किसी के नहीं होतीं।

× × ×

मृणाल शहर आ गयी। किस तरह आयी यह वह आप ही नहीं जानती, केवल आशा उसे खींच लायी। मौत ने पुकारा, शैतान ने पुकारा, दिल के चोर ने पुकारा पर इस अमर आशा की पुकार के सामने सब पुकार व्यर्थ गयी। लेकिन जिस आशा का सहारा लेकर वह मुसीबत का समन्दर लील आई, वह कोरी मृगतृष्णा निकली। एक जून पेट की खिचड़ी के लिए उसे जो युद्ध करना पड़ा, उसने मृणाल की कमर तोड़ दी। शहर के दृश्य देखकर उसका बोल बन्द हो गया। वह चुपचाप आंखें फाड़े शून्य में ताकती रहती है। चितरंजन गोद में पड़ा छातियां चिचोड़ता रहता है। कभी होता है तो अलग अकेले में बुक्का फाड़ कर रो उठती है। कभी जोर मारकर गिड़गिड़ाती है, पर गिड़गिड़ाना उसने सीखा हो तो बात बने। लेकिन फिर भी कभी उस रक्तहीन रूखे मुखड़े पर किसी को दया आ ही जाती है। चुपके से एक दिन एक भद्र पुरुष उसके पास आकर बोले—भूखी हो ?

मृणाल की आशा जागी, बोली—मेरी चिन्ता नहीं पर इस बच्चे को दूध मिल सके तो..... ।

हां, हां—भद्र पुरुष बोले—इसे दूध मिलेगा, तुम्हें भात मिलेगा।

ओह—मृणाल गद्‌गद् हुई—कैसे कैसे पुण्यात्मा हैं, अभी इस देश में ?

वह कहते रहे—मेरे साथ चलो, तुम्हें कपड़े मिलेंगे। मेरे देश की युवतियों को क्या इस प्रकार रहना सोहता है और फिर तुम तो.....

अचानक मृणाल का पांव जैसे अंगार पर पड़ा—ओ दइया।

चलो.....।

मृणाल ने चितरंजन को जोर से दबा लिया। उसका हृदय फटने लगा।

चलती नहीं ?

नहीं।

नहीं..... ?

नहीं, नहीं, अभागे पुरुष, नहीं। पापी पेट की ज्वाला में झुलसती हुई नारी से तुम उसकी इज्जत भी मांग लेना चाहते हो। सब कुछ तो तुमने ले लिया, अब क्या इतना भी रखने का अधिकार तुम्हें खलता है।

भद्र पुरुष में लज्जा कहां थी, वीभत्स हंसी हंसकर कहा—जान पड़ता है अभी नई आयी हो। पगली। इसी के सहारे आज सैकड़ों घरों का खर्च चलता है। जीने के लिए ऐसा करना पाप नहीं है !

आग क्यों नहीं लग जाती ऐसे जीने को। कलंक को माथे पर सजा कर कोई आंखें कैसे खुली रखता है। मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा भात, तुम्हारा दूध। मैं हाथ जोड़ती हूं तुम मुझे छोड़ दो.....।

कहती कहती मृणाल रो उठी। भद्र पुरुष फिर हंसे। भवें चढ़ाकर हाथों को शून्य में हिलाया। फिर शैतानी मुस्कराहट से बोले—आती लक्ष्मी को ठुकराने का जो परिणाम होता है, वह मैं समझता हूं तुम जानती हो, पर अगर कभी आवश्यकता हो तो मैं क्रुद्ध नहीं होऊंगा। मैं सदा तुम्हारी सहायता करने को तैयार हूं।

और वे चले गये। मृणाल के प्राण लौटे मानो आज भर पेट भोजन मिला। उसने एकदम निश्चय किया कि वह अब अपने घर लौट जावेगी

जरूर लौट जावेगी, किसी भी शर्त पर, एक भी क्षण, वह शहर में नहीं रहेगी। ,हाय रे ! मानव के रूप में कैसे शैतान यहां बसते हैं ? खून चूस-चूस कर लाल हुए दानव अब हमारा एकमात्र सम्बल भी फुसला कर छीन लेना चाहते हैं। इसीलिए तो भूख इन्होंने गांव गांव फैला रखी है, इसीलिए तो ये मछली पकड़ने के कांटे की तरह आशा की डोर हिलाते रहते हैं। हाय रे भाग्य। क्या सच भगवान है, क्या सच ऊपर की दुनिया है ?...नहीं, नहीं यह सब इसी शैतान की माया है, नहीं तो क्या श्मशान में भी मानव को प्रणय की सूझती है..... !

मृणाल के भीतर का दबा विद्रोह जाग उठा। नारी की समस्त कोमलता जलकर कोयला बन चली। बस ,उसमें चिन्गारी लगने की देर है कि वह जल उठेगी और ध्वंस कर देगी सब विघ्नजाल,लेकिन... लेकिन गोद में चितरंजन है। चितरंजन... । हां ! वह देश की धरोहर है, ,स्वामी की स्मृति...लेकिन नहीं ! देश इस योग्य नहीं है कि वह जिये, महान् बने।...कहां है देश के वे बड़े आदमी ? वे देवता ? स्वामी जिनकी चर्चा करते कभी नहीं थकते थे। जिनके सुन्दर-सुन्दर चित्र उन्होंने कमरे में सजाये हैं। उन्हें दिखाकर वे कहते—देख मृणाल ! ये हैं स्वामी विवेकानन्द। अपनी बंग भूमि के लाल ! कैसे तेजस्वी हैं ? अमेरिका में इन्हीं ने हिन्दू धर्म का नाद गुंजाया था। इन्होंने मानव-मानव के बीच की खाई को पाटने का अनथक प्रयत्न किया था। ये रामकृष्ण हैं इनके गुरु, निर्माता ! ये कवि ठाकुर हैं देश के मुकुट मणि। ये नेहरू हैं,ये चितरंजन हैं,ये गांधी...न जाने उसे क्या क्या याद आने लगा—हाय कहां हैं ये महामानव, क्यों नहीं ये देश को बचाते। गांधी और नेहरू तो अब भी हमारे बीच हैं। वे क्यों नहीं अपना स्वर ऊंचा करते। वे क्यों नहीं यहां आकर देखते कि मानव मानव के रक्त-मांस को खाकर ही सन्तुष्ट नहीं है; वह उसकी आत्मा पर भी कलंक लगाना चाहता है.....।

उसने बहुत-कुछ सोचा। उसके स्वामी ने जो-कुछ समझाया था,सुझाया

था वह अब इस बेबस शिकंजे में फंसी तड़फड़ाती नारी को रह रहकर याद आने लगा। याद ही नहीं, उसमें तेज फूटने लगा, वह तेज जो मृत्यु को चुनौती देता है परन्तु चुनौती के सामने तो चितरंजन है जो सब विद्रोह को, तेज को लील जाता है। वह रो पड़ती है,हाय-स्वामी। स्वर्ग में, नरक में जहां भी तुम हो, देख रहे हो। मुझे बताओ मैं क्या करूं ? तुम मुझेमरने नहीं देते, दुनिया जीने नहीं देती। तुम कहते हो यह देश का धन है, पर देश तो अपने धन को पैरों से रौंद रहा है। उसे तो सोना प्रिय है...। लेकिन इसे तो बचाना ही होगा ! कैसे...? कैसे बचाना होगा ? गांव में सर्व-भक्षी मौत फैली है। इसे छोड़ेगी नहीं...और वह फूट फूटकर रोने लगी। पर रोते रोते जैसे उसे कुछ सुझाई पड़ा। सागर की अथाह तरंगों में थपेड़े खाते खाते जैसे उसने उड़ते पक्षी को देखा। उसने जोर से बच्चे को छाती में भर लिया और फिर चूमते चूमते पागल होने लगी—हाय मेरे लाल। तू इतना सुन्दर क्यों है ? तू इतना प्यारा क्यों है...? और इसी प्रकार विचारों के आल जाल में फंसी वह भूखों के बीच में जाकर पड़ रही। इन आर्तनादों के बीच प्रकृति का नियम उसी तरह चलता रहा। वही अंधेरा, वही चांदनी, वही गर्मी, वही वर्षा। वही चिड़ियों की चहचहाहट, कुत्तों की भों भों। आस्मान का नीलापन, सूर्य का उत्थान और पतन। मृणाल जहां सोई थी, वहां भी रात के बाद दिन उगा। चहल-पहल जागी, आवागमन शुरू हुआ। अनगिनत भूखों का रोना चारों तरफ व्याप्त हो गया। जो मरणासन्न थे, वे आर्त्तनाद कर उठे, जो मुक्त हुए उनकी आत्माएं आस्मान में मंडराने लगीं, लेकिन वीभत्सता से दूर एक ऊंचे मकान के पीछे कुछ विशेष चहल-पहल मची। देखते-देखते एक छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो गई।

क्या है रे, क्या है यहां—एक स्वर उठा।

बच्चा।

बच्चा, किसका बच्चा ?

बाबा, एक बच्चा है, अकेला पड़ा है धरती पर।

कौन डाल गया, देखा किसी को ?

नहीं।

ओ, कितना सुन्दर है पर कितना दुर्बल।

अरे रे ! रोता है—वृद्ध पुरुष आगे बढ़ आए—ढूंढो रे किसका है।

किसी ने कहा—किसी भूखे का होगा।

ना, ना—बाबा बोले—भिखारी क्या खाकर ऐसा बच्चा पाएगा। सोने की प्रतिमा है।

तभी भीड़ को चीरते एक भद्र पुरुष आए। वे ऊंचे मकान के स्वामी थे। उनके साथ दो नारियां थीं, एक युवती, दूसरी प्रौढ़ा-सी।

प्रौढ़ा ने आगे बढ़कर कहा—कहां है रे वह बच्चा, देखूं।

युवती देखकर बोली—दइया रे, कैसे रोता है यह ?

किसका है ?—प्रौढ़ा कातर सी बोली।

युवती ने उसे गोद में चिपका लिया। शिशु को न जाने क्या मिला, वह एकदम चुप हो गया और मुंह फाड़-फाड़कर छाती में मारने लगा। युवती करुणार्द्र होकर बोली—भूखा है, दीदी। मां का दूध मांगता है।

तो ले चल, घर ले चल शोभा—प्रौढ़ा बोली और मुड़कर पुरुष से कहा—ढूंढो जी किसका बच्चा है। मां होगी तो कलेजा फटता होगा। गोदी खाली होने पर भी मेरा जी बैठा जाता है।

लेकिन वे भीड़ को चीरकर निकलें निकलें कि कोलाहल मचा—देखो, देखो, वह कौन है ?

कौन है...कौन है जी...वह स्त्री...पगली लगती है वह तो.....

वह पगली दौड़ी-दौड़ी वहीं आई। अरे यह तो मृणाल थी। सूखे बिखरे बाल; फीका मुख, सजल नयन, दयार्द्र वाणी—अरे ठहरो; बच्चा मेरा है, मैं मां हूं, मैं उसकी मां हूं...कहते-कहते उसने बच्चे को युवती की गोद से झपट लिया और छाती में इस तरह दबोचा जैसे उसे कोई

छीने ले जा रहा हो और फिर तीर की तरह उसी ओर, जिधर से आयी थी चली गयी।

अचकचाकर प्रौढ़ा बोली—बच्चा इसी का है पर यह है कौन ?

युवती की आंखें भर आईं थीं, वह बोल न सकी, केवल देखती रही। भीड़ कौतूहल से चर्चा करती फटने लगी। प्रौढ़ा फिर भद्र-पुरुष को सम्बोधित कर बोली—अजी इसका पता तो लगाना यह है कौन ?

भद्र-पुरुष ने धीरे से कहा—किस किस का पता लगाएगी, सरोजिनी, आज बंगभूमि का रोम-रोम पीड़ित है, मानवता नष्ट हो चुकी है, प्रलय की भूमिका बंध रही है। कौन बचेगा और किसको बचाएगा ? आओ चलो फिर भी इसे देखूंगा।

भीड़ के लोग चले गए थे। ये तीनों भी आश्चर्य से, करुणा से दबे-दबे घर की ओर लौटे कि युवती चौंक पड़ी—वह फिर आ रही है।

प्रौढ़ा मुड़ी—आ रही है ?

हां, दीदी। देखो। वह फिर आ रही है।

और सच ही मृणाल फिर पागलों की तरह लौट आयी। आते ही उसने बच्चे को प्रौढ़ा के सामने धरती पर लिटा दिया। बोली—मेरी भूल थी। मैं इसे पाल न सकूंगी। इसे तुम ही पाल सकती हो, यह तुम्हारा बच्चा है। देश का बच्चा है...।

और इतना कहकर वह पागलों की तरह लड़खड़ाती हुई, मकान, सड़क, बगीचा सबको चीरती हुई दूर, भिखारियों के बड़े झुण्ड में अंतर्धान हो गयी। यह सब इतनी शीघ्रता से, इतने रहस्यमय वातावरण में हुआ कि वे तीनों हक्के-बक्के रह गये। बालक जब रोया, तभी उनकी नींद खुली। प्रौढ़ा ने लपककर उसे गोद में चिपका लिया और बोली—शोभना ! मैं सच कहती हूं, यह बच्चा उसका नहीं है। कभी नहीं है।

: १३ :

आज़ादी

गाड़ी जब स्टेशन पर रुकी तो सन्ध्या रात्रि की बाँह पकड़ चुकी थी। सदा की भांति सवारियां चढ़ी और उतरीं। किशुन भी उतरा। कुली को पुकारा। कुली अधेड़ था, मैला-कुचेला परचेतन। एक बार किशुन को सिर से पैर तक देखकर बोला—सुना बाबूजी ? दिल्ली में कांग्रेस का राज्य हो गया है।

किशुन ने कुली को देखा, मुस्कराया, फिर बोला—सुना तो है।

—तो बाबूजी अब मुसीबत के दिन दूर होंगे।

—हाँ जी। अपना राज है। लोग कहते थे अब दियासलाई, मट्टी का तेल, कपड़ा, खाना, सब आज़ादी से मिलेगा।

आशा की इस लहर ने किशुन के मन को भी छुआ। वह दृढ़ता से बोला—हाँ मेरे दोस्त ! अब सब कुछ मिलेगा,सब-कुछ।

कुली का मन खिल उठा। सामान सीधे तांगे पर रख कर उसने किशुन को सलाम किया। किशुन ने, उसने जो मांगा था, उससे एक आना ज्यादा दिया और तांगे में जा बैठा। तांगेवाला भी आदमी था। किशुन के कपड़े देखकर उसने पूछा—बाबूजी आप कांग्रेस में हैं।

किशुन ने कहा—हां !

वह हँसा—अब तो आपका राज्य हो गया है, बाबूजी !

—कुछ हुआ तो है।

—जी हां। लोग कह रहे थे अब हमें राहत मिलेगी। मँहगाई ने

सबकी कमर तोड़ रखी थी। खाना, पीना, रहना सभी हराम था। अब तो इन सब का इन्तज़ाम सरकार करेगी।

किशुन—करना तो चाहिए।

तांगेवाला—हाँ जी! ज़रूर करना चाहिए। गांधी महात्मा का प्रताप है और बाबूजी.....।

कहते-कहते वह सहसा रुक गया। किशुन बोला—हाँ-हाँ, कहो।

तांगेवाला—मैं पूछता था बाबूजी कैदी भी छूट जायेंगे। बादशाही ज़माने में तो ऐसे वक्त सब को छोड़ देते थे।

किशुन—अब भी छोड़ेंगे

तांगेवाला खुश हुआ। बोला—तो मेरा बेटा भी छूट जायगा।

—तुम्हारा बेटा जेल में है? आज़ादी की लड़ाई के सभी सैनिकों को सरकार छोड़ेगी। तुम्हारा बेटा भी छूटेगा।

तांगेवाला झिझका—पर बाबूजी उसने तो कत्ल किया था।

किशुन चौंका—कत्ल!

जी हां। आप जानते हैं गांव में बात-बात पर तकरार रहती है। एक औरत का किस्सा था। दो कत्ल की वारदातें हुईं थीं। उन्हीं में वह भी पकड़ा गया।

—कितनी सजा है?

—बीस वर्ष।

—कितने बीत गये।

—पांच

किशुन के दिल को धक्का लगा। उसने तांगेवाले को गौर से देखा। उसके झुर्रियों से भरे खुरदरे मुंह पर चिकनाहट उमड़ आई थी। आँखों में चमक थी, और दिल प्रकाश से खिल रहा था। उसे लगा यह हर्ष कितना झूठा है। कोई भी सभ्य सरकार ऐसे आदमी को कैसे छोड़ सकती है। पर वह तांगेवाले का जी नहीं दुखाना चाहता था। इसी-लिए चुप रहा। उसका घर आ गया था। उसने पैसे चुकाये और उतर

पड़ा। घर में प्रवेश करते ही उसने देखा बच्चे अभी तक सोये नहीं हैं। वे अपनी छोटी-सी कोठड़ी में दीवे जलाने में व्यस्त है और भाभी प्रसन्न मुद्रा से उनके इस काम में योग दे रही हैं। वह क्षण भर चुपचाप उन्हें देखता रहा। सारे रास्ते वह यही उत्साह देखता आया था। फिर धीरे से बोला—भाभी दीवाली मना रही हो।

भाभी चौंकी पर दूसरे ही क्षण मुस्करा कर बोलीं—आ गये लाला। ये लोग मानते ही नहीं थे। बाहर देख आये थे।.....और लाला आज दीवाली मनाने का दिन भी है।

किशुन ज्ञानशून्य-सा बोला—सच।

भाभी को यह मुद्रा बड़ी अजीब-सी लगी। उसने कहा—तो क्या आज दीवाली नहीं मनानी चाहिए?

—नहीं।

—क्यों।

—गांधीजी ने मना किया है।

भाभी के दिल में चोट लगी। सोचा इसी दिन के लिए उन्होंने, उनकी मां ने गोली खाई थी। इतना देकर जो प्राप्य मिला है उसे पाकर कोई कैसे खुशी न मनावे? इसीसे पूछा—गांधीजी ने क्यों मना किया है?

—क्योंकि हम अभी आज़ाद नहीं हुए हैं।

—नहीं हुए।

—ना भाभी। यह तो आज़ादी का नाटक है। सच्ची आज़ादी नहीं।

भाभी जो दुखी थी अब महा दुखी हो उठी। उसका मुख म्लान हो आया। उसे कुछ सूझ न पड़ा। तभी तीनों बच्चे दीवे रखकर लौट आये। उन्होंने किशुन को देखा और एक साथ मांगों की बौछार शुरू कर दी।

—चाचाजी। कन्डील क्यों नहीं लाये।

—चाचाजी। मोमबत्ती नहीं है।

—औल ताजी। बन्दूलवाल।

—हाँ, हाँ ! लाल पीले झण्डे ।

—औल तछबील ।

किशुन ने प्यार से तीनों को थपथपाया । उनमें दो भाभी के बच्चे थे । एक उसका था । उनसे उसने वायदा किया कल सब मांगें पूरी की जायंगी ।

और फिर ऊपर चला गया । भाभी अब उनके साथ सहयोग न कर सकी । उन्मन-सी शून्य में ताकती और सोचती रही । बाहर अब भी कोलाहल बढ़ रहा था और उससे ऊपर उठकर प्रकाश की गहरी रेखा उसके सामने आकर बिखर गई थी। उसने सोचा—आज वे होते ! आज मां होती...पर किशुन तो कहता है हम आज़ाद नहीं हैं । आखिर कब होंगे ? आखिर यह आज़ादी कितना खून पीयेगी ।

भाभी इस तरह सोच रही थी और उधर खाना खिलाती किशुन की पत्नी किशुन से कह रही थी-भाभी आज बहुत खुश है ।

किशुन बोला—खुश होना ही चाहिए । खुशी जीवन है ।

पत्नी मुस्कराई—अब तो अपनी सरकार है । हमारी मदद करेगी ।

—शायद ।

—करनी तो चाहिए... ।

किशुन हँस पड़ा । गुदगुदी उसके मन में भी उठी पर उसने कुछ जवाब नहीं दिया । वह चुपचाप खुली छत पर जा लेटा और तन्मय होकर तारों से भरे आस्मान का देखता रहा । मौसम सुहावना था । वायु में न गरमी थी न सरदी । विशेषकर आकाश के नीचे जो झिल-मिल करते तारों से जड़ा हुआ था—वायु मुक्त होकर बह रही थी । उसने सोचा मुक्ति में कितना आनन्द है । आनन्द में सुख है, सुख में जीवन ! आज मेरा देश मुक्त होने चला है । आज उसे भी जीवन मिला है ।

मन में प्रश्न उठा—तो क्या आज प्रकृति भी खुश है ।

जवाब दिया आँखों ने । प्रकृति न खुश है न रंजीदा ! तारे उसी

तरह चमकते हैं। वायु उसी तरह बहती है। धरती और आकाश सदा की तरह मटमैले और नीले हैं परन्तु हिन्दुस्तानी मानव का मन, वह तो उत्साह और उमंग से उमड़ा पड़ता है। सदियों के अभाव वह आज छिन्न-भिन्न होते देख रहा है। कुली पूछता था—अब दिया—सलाई मिलेगी, तेल मिलेगा, चीनी की तंगी नहीं रहेगी, राशन सवाया हो जावेगा, भाव गिरेंगे, खाना-पीना, रहना-सहना आसान होगा।

तांगेवाला सोचता था—उसका हत्यारा बेटा मुक्त होगा।

पत्नी सोचती है-सरकार हमारी गरीबी दूर करगी! क्यों करेगी। क्योंकि हमने उसके लिए बलिदान किये हैं।

सहसा उसका मन विषाद से भर उठा-आजादी के लिए जान देने का बदला! छी! छी! कैसी है यह मानव बुद्धि? क्या इस जरा से स्वार्थ के लिए इतना महान त्याग किया था...?

सोचते-सोचते उसके सामने वही पुराना दृश्य एक बार फिर आगया। अगस्त १९४२ में अन्तर्चेतना की जो लहर आप-ही-आप फूट पड़ी थी उसने उसके कस्बे को भी नहीं छोड़ा था। गिरफ्तार होने वाले गिरफ्तार हुए। मीटिंगें हुईं, जुलूस निकले। लोगों ने समझा आजादी आगई है, शासन पर अधिकार करना चाहा। अधिकारियों ने उनका स्वागत किया बन्दूक की गोलियों से। गोलियों से जिहें प्रेम था वे सच्चे निकले। धरती माता ने उन्हें अपनी गोद में जगह दी। किशुन का बड़ा भाई उन्हीं में था। कहते हैं थाने के सामने गोली खाकर वह क्षण भर के लिए धरती पर लेट गया परन्तु दूसरे ही क्षण वह हड़बड़ा कर उठा और दौड़ कर थाने के अन्दर पहुंचा। वहीं से चिल्ला कर उसने कहा—आओ साथियो मैंने थाने पर अधिकार कर लिया है।

और यह कह कर वह सदा सदा के लिए मौन होगया। किशुन की आँखें भर आईं पर विचारों की ट्रेन अबाध गति से आगे बढ़ती रही।

बेटे की प्यारी मौत का समाचार जब मां को मिला तो वह रोई नहीं। उसने झण्डे को अपने कांपते हाथों में थाम लिया। थानेदार क्षण भर

के लिए ठिठका फिर बोला—बुढ़िया। झण्डा छोड़ दे।

मां हँस कर रह गई थी। थानेदार ने फिर चेतावनी दी। भीड़ और आगे बढ़ी। थानेदार भभक उठा। आगे बढ़कर उसने मां के हाथों में तानकर डण्डा मारा! हाथों में हल्का-सा कम्पन हुआ। चेहरेपर वेदना का हल्का-सा बादल उमड़ा और मिट गया। थानेदार ने काँप कर कहा—फायर।

राईफल उठी और गिरी। झण्डा हवा में एक बार जोर से फरफराया और गिर पड़ा। उसने रक्त से लथ-पथ मां की छाती को ढक लिया था।

किशुन अब सुबक उठा पर घर तो उसी तरह मौन था। गहन आस्मान उसी तरह मंद-मंद मुस्करा रहा था। रोते-रोते उसने सोचा—क्या तारों में रहने वाले इस दुनिया को देखते हैं! क्या उन्होंने मेरी मां को, मेरे भाई को हँसते-हँसते प्राण तजते देखा है.....

वह चौंका—मेरी मां और मेरा भाई ही क्यों। इस देश के असंख्य शहीदों को उन्होंने देखा होगा।

और तभी उसे कँपाते हुए एक आवाज बाहर फैल गई—लाला, लाला! नीचे आओ।

यह भाभी का स्वर था जो भय से त्रस्त था लेकिन आज भय कैसा! वह नीचे दौड़ा—क्या हुआ! क्या है भाभी!

भाभी पीली पड़ गई थी। लड़खड़ाते हुये बोली—दंगा होगया...?

दंगा! कहां!

मुसलमान और हिन्दू लड़ पड़े हैं। वह देखो शोर! चौक में ही है।

वह अबतक स्तब्ध था, अब जागा। कान फाड़ने वाला शब्द चारों ओर व्याप्त था। उसने शीघ्रता से कहा—भाभी! तुम सबको लेकर ऊपर जाओ। मैं देखता हूं.....।

नहीं किशुन.....।

तभी भड़भड़ा कर नीचे का दरवाजा खुला। कोई ऊपर दौड़ा,

वे काँपे।—दौड़ो भाभी ? शीला, रामू, सावित्री, देवी, ऊपर दौड़ो।

और पागलों की तरह वे दौड़े तभी जीने से आकर एक बालक किशुन के सामने खड़ा हो गया। वह कांप रहा था। मौत के भय ने उसके आँसू सुखा दिये थे। किशुन बुरी तरह सहमा, बोला—क्या है।

लड़खड़ाते स्वर में बालक ने कहा—वे मुझे मारेंगे। वे.....

और वह फूट पड़ा। तभी जीने में फिर शोर मचा। एक साथ कई आदमी ऊपर चढ़ आये। बालक चीख कर गिर पड़ा। किशन पागल-सा चिल्लाया—क्या है। यहां क्यों आये हो।

जो सब से आगे था उसने कहा—तुम्हारे घर में यह लड़का है, हम इसे मारेंगे।

क्यों ?

क्योंकि यह मुसलमान है और मुसलमान देश के दुश्मन हैं।

लेकिन मैं नहीं हूँ और यह मेरे देश का है !

यह कृतघ्न है।

परन्तु मैं नहीं हूं।

हम इस लड़के को मारेंगे।

पर मैं नहीं मारने दूंगा।

पीछे से आवाज़ लगी—कौन रोकता है ? मारो इसे।

और पांच-छै जने धकेल कर आगे बढ़ आये। तभी ऊपर से दौड़ती हुई भाभी उनके बीच में आ खड़ी हुई। वह न डर रही थी न क्रुद्ध थी। शांत दृढ़ उसने कहा—मुझे जानते हो ?

वे काँप उठे। वही बोली—मेरे पति ने देश की आज़ादी के लिए छाती पर गोली खाई थी। देश की आज़ादी के लिए मेरे स्वामी की जन्मदात्री ने अपने खून से धरती माता की मांग भरी थी। उसी आज़ादी के लिए मैं इस बालक की रक्षा अपने प्राण देकर नहीं बल्कि अपने स्वामी के बच्चे के प्राण देकर करूंगी।

इतना कह कर वह चुप हो गई। तब उसके नयन विश्वास और

स्नेह से पूर्ण थे। उसके ओठों पर दृढ़ता नाच रही थी। उसके मस्तक पर वीरता चमक आई थी। क्षण भर आगन्तुकों ने उसे देखा। वे काँपे और पीछे से आवाज़ आई—जो रास्ते में बाधा देता है उसे मार डालो।

हां! आगे से हटो। हम उसे मारेंगे। हमें देर हो रही है।

हम देश के दुश्मन का नाश करेंगे।

और रश बढ़ा, लाठियां उठीं। तभी जो आगे था, उसने हाथ उठाकर कहा—रुको।

और भाभी की ओर मुड़ कर उसने कहा—तुम्हारा सौभाग्य है मैं तुम्हें जानता हूं। तुम पर मेरा हाथ नहीं उठ सकता पर तुमने आज भयंकर पाप किया है। एक दिन तुम इसे जानोगी। तब पछतावे की आग से तुम्हें जलना पड़ेगा। तुम सांप को दूध पिला रही हो इसलिये तुम्हारा नाश होगा।

कहते-कहते उसकी मुद्रा कठोर हो उठी! उसका मुख विकृत हो आया। वह तेजी से मुड़ा और उतरता चला गया। भीड़ उसके पीछे थी।

भाभी ने तब प्रेम से उस बालक को पुचकारा और मुड़कर किशुन से कहा—गांधीजी सच कहते हैं हम अभी आज़ाद नहीं हुए हैं। हम तो अभी आज़ादी को पहिचानते भी नहीं हैं।

: १४ :

द्वन्द्व

सुजाता की आँखें भर आईं। सारे चित्र उसके सामने इस तरह घूम गये, मानो वे सब सजीव घटनायें अभी उसके सामने घट रही हैं और वह उन्हें देख रही है असमर्थ, विवश, पत्थर के बुत की तरह; न हिल सकती है, न बोल सकती हैं। केवल उसके दिल का दर्द आँखों में उमड़ कर चारों ओर फैलता जा रहा है, जिसकी चमक देखकर वह स्वयं ही काँप उठती है, लेकिन वह सोचती है, उस कम्पन का मूल्य ही क्या, जो हाथों को आगे न बढ़ा सके, जो पैरों को चलने पर विवश न करे.....वह रुक गई। उसका दर्द और भी गहरा हो उठा। उसने फुसफुसाकर कहा—मुझे चलने से कोई नहीं रोक सकता, मुझे देने से कोई मना नहीं कर सकता? नहीं, मैं स्वतन्त्र हूँ। मैंचाहे जो कर सकती हूँ.....

विचारों पर फिर एकदम धक्का लगा। वह खड़ी थी, अब पास पड़े पलँग पर बैठ गई या कहें, लुढ़क पड़ी; क्योंकि उसी पर उसकी छोटी लड़की अमला सोई थी, वह एकदम चौंक कर उठी.....ओह। सुजाता हड़बड़ायी। अमला को गोदी में उठा लिया, पुचकारा। क्षण भर के लिए सब विचार हवा हो गये। उसे अपने पर ग्लानि हो आयी लेकिन दूसरा क्षण बीता, अमला गोद में चिपक कर सो गई और वह फिर कहने लगी—कल इसी वक्त अनन्त आया था। उसने आते ही कहा था—भाभी! भीख मांगने आया हूँ। सुजाता हँसी थी—भीख

मांगने आये हो, तो दरवाजे पर जाकर खड़े हो। एक मुट्ठी आटा ले आती हूँ। वह नहीं हँसा था; बल्कि गम्भीर होकर बोला था—आटा नहीं भाभी, मुट्ठी में रुपये भरो।

रुपये!

हां, रुपये, भाभी! जो कुछ भी जीवन में जोड़ा हो. वह मुझे दे दो।

हँसी फिर आई—डाका डालने का बड़ा सुन्दर तरीका ढूंढ़ा है तुमने!

आशीर्वाद दो भाभी ऐसा डाका डालने में मैं समर्थ होऊं—अनन्त जरा भी नहीं हँसा। सुजाता शङ्कित हुई—आखिर क्या बात है, अन्तू?

बात जानोगी?

हां, कुछ बताओ भी, तुम तो आज पहेली बुझा रहे हो।

यह ऐसी पहेली है भाभी, जो मेरे बुझाये न बुझेगी—अनन्त बोला और फिर उसने बगल से अखबारों का एक बण्डल निकाला, उसे पलङ्ग पर फैलाने लगा—लो, देखो भाभी! बात यह है। देखती हो इन तसवीरों को, सुनती हो, ये क्या कहती हैं?

सुजाता ने अचरज से उन तस्वीरों को देखा। देख कर अचकचाई, कांपी, फिर धीरे से पढ़ने लगी। (१) ये दो बच्चे अपने पिता को अन्तिम सांस तोड़ते देख रहे हैं (२) यह मां अपने मरते हुए बच्चे को छाती से चिपका रही है, दूसरा बच्चा मरा पड़ा है, तीसरा कहता है, मां! भूख लगी है (३) अब इसे इसे दूध की जरूरत नहीं मां! (४) आधी छटांक खिचड़ी के लिए अपार भीड़ (५) सड़कों पर लावारिश लाशों का ढेर (६) यह बच्चा है, जिसे भूखी मां ने एक आने में बेचा है (७) ओ, जलाने वाले! इसे भी ले जाओ...सुजाता आगे न पढ़ सकी। दिल में कुछ चुभने लगा। बोली—अन्तू! आखिर यह सब क्या है?

भूख।

इन्हे कोई खाना देनेवाला नहीं।

नहीं।

तो ?

इन्हीं के लिए भीख मांगने आया हूँ।

ओह ! तुम चन्दा कर रहे हो और ये कलकत्ते के दृश्य हैं—सुजाता एकदम बोल उठी।

जी, आपने ठीक समझा।

सुजाता हँसी नहीं, बल्कि गम्भीर होकर बोली—कलकत्ते की बातें मैंने सुनी हैं, अन्तू ! अन्न की कमी से यह सब अनर्थ हो रहा है और अभी क्या होगा, इसका किसी को पता नहीं है। कौन जाने, हमें भी इसी तरह तड़प-तड़प कर दम तोड़ना पड़े !

शायद तुम ठीक कह रही हो, भाभी !

आखिर यह सब क्यों होता है ?

कौन जाने।

हाँ, अन्तू ! कौन जाने भगवान् ऐसा क्यों करते हैं ! शायद प्रलय होने वाला है।

शायद।

दोनों चुप हो रहें। क्षणिक सन्नाटा छा गया, फिर अन्तू बोला—मुझे आगे जाना है, भाभी !

सुजाता चौंक पड़ी—ओह ! मैं भूल गई, अन्तू। जी दुख रहा है। मैं कल सवेरे ही तुम्हारे घर रुपये भेज दूंगी। सन्ध्या को वे आयेंगे।

मैं समझा—अन्तू जरा मुस्कराया—मैं कल आऊंगा।

सुजाता लजाई—आ जाना, मैं जरूर दूंगी अन्तू, अब तो...

जानता हूँ—अन्तू ने कहा। और उठकर चल पड़ा। सुजाता उसे देखते-देखते खड़ी रही। अचानक जी में उठा, पुकार कर कहे—अरे अन्तू ! जरा ठहर तो, पानी-वानी पीता जा। लेकिन शब्द वाणी का साथ न दे सके, भावों से जकड़े रहे।

और यही बात लेकर सुजाता सोमेन से सलाह करने बैठी। नारी थी—बात का क्रम जानती थी। सन्ध्या को भोजन से निपटकर, जैसे ही सोमेन ने नया मासिक उठाया, सुजाता बोल उठी—अखबार तो आप रोज ही पढ़ते हैं।

सोमेन मुस्कराया—पढ़ता हूँ; तुम भी पढ़ोगी? कई बार कह चुका, आजकल अखबार जरूर पढ़ा करो।

सुजाता लजा गई—पढ़ना तो चाहिए।

तो मैं कह दूंगा 'हिन्दुस्तान' या 'विश्वमित्र' दे जाया करेगा। अङ्गरेजीका तो तुम ठीक-ठीक समझोगी नहीं।

हां, सुजाता ने कहा। फिर रुककर बोली—सुना है कलकत्ते में तो आदमी सड़कों पर मर रहे है।

सोमेन ने पत्रिका पलटते-पलटते कहा—मौत स्थान की चिन्ता नहीं करती, सुजाता!

जी, पर इस तरह आदमी मरने लगे तो.....।

तो दुनिया निबट जायगी—सोमेन बड़े जोर से हँस पड़ा—तो फिर कौन बुरा काम होगा, यह दुनिया बनी ही क्यों है?

भगवान जाने.....।

भगवान को ही कौन जानता है।

सुजाता सोमेन के इस तर्क-प्रवाह से अप्रतिभ हुई, बोली—आपने तो दर्शन-शास्त्र पढ़ा है। मैं आपसे तर्क नहीं करती। मैं तो पूछती थी कलकत्ते में जो लोग भूखे सड़कों पर मर रहे हैं, मां के देखते-देखते उसके बच्चे प्राणों को छोड़ देते हैं, अपने बच्चों को बिलखते छोड़कर मां-बाप आँख मींच लेते हैं, यह जो अव्यवस्था और अन्याय फैला है, उसके लिए कौन जिम्मेदार है?

भगवान—सोमेन ने उसी तरह आँखें गाड़े कहा।

और—सुजाता बोल उठी आप-ही-आप।

भाग्य!

और ?

राजा।

सुजाता मशीन की तरह फिर 'और' कहने को हुई, पर रुक गई। सोमेन बात करने के मूड में नहीं था, यह वह समझ गयी। इसलिए उसका दिल कुछ भर आया, ग्लानि-सी पैदा हुई। आंखों में जैसे कुठार कसक उठा, मलने लगी। अब सोमेन ने आँखें ऊपर उठाईं। जाना, सुजाता रिसा गयी है; इसलिए मुस्करा उठा और बोला—और नहीं पूछोगी, सुजाता ?

क्रोध बह पड़ा—आप किसी को कुछ समझते हैं, आपसे कोई क्या पूछे ?

सोमेन और भी मुस्कराया—आपकी बात का जवाब मैं दे रहा हूँ, अगर वह आपके मन के अनुसार नहीं है, तो मैं क्या करूं ?

खाक—सुजाता रिसाई रही।

सोमेन हँस पड़ा—खाक तुम्हें महँगी पड़ेगी, सुजाता। भारत में उन बेवकूफों की कमी नहीं है, जो रात-दिन खाक को माथा नवाया करते हैं। मुझे साधू बनने में कोई आपत्ति नहीं है।

सुजाता भी ढीली पड़ी—तब इस घर का क्या करोगे ?

दान।

अभी क्यों नहीं कर देते ?

गृहस्थी में रहते सर्वस्व-दान पाप है।

सर्वस्व नहीं, वह तो केवल कुछ रुपयों की बात है।

रुपये—सोमेन चौंका।

जी—सुजाता मुस्करायी।

सोमेन ने अचरज से सिर उठाया और सुजाता को देखा। वह हंसना चाह रही थी, परन्तु विषाद उसे मथे डाल रहा था और बेबसी के कारण अपने पर झुँझला रही थी। सोमेन को बड़ा अजीब-सा

लगा। उसने पत्रिका बन्द कर दी और पास आकर कहा—सुजाता! आखिर बात क्या है?

सुजाता ने ऊपर देखा और कहा—बात यही है कि अन्तू आया था।

अनन्त?

जी।

चन्दा मांगने के लिए?

जी।

आपने कहा कल आना?

जी।

दिया क्यों नहीं?

सुजाता ने ऊपर देखा—मेरे पास क्या था, जो मैं देती?

मेरे पास क्या है।

यही तो सलाह करनी है।

सोमेन फिर बैठ गया—सुजाता! मैं तुम्हारे दर्द को पहचानता हूँ। दर्द मेरे भी उठता है। आँखें मेरी भी उफनती हैं। छाती भर आती है। जी में उठता है कि सब-कुछ दान कर दूं, सब-कुछ।

सुजाता ने सगर्व सोमेन को देखा। सोमेन फिर बोला—लेकिन सुजाता! मैं सोचता हूँ, भगवान् सब-कुछ देख रहे हैं, वह सब-कुछ जानते हैं, अनन्त धन आज भी देश में भरा पड़ा है, तो फिर यह विडम्बना क्यों है? क्यों यह भूख जन-जन को खाये जारही है? क्यों यह आत्म-विश्वास ढीला पड़ता जा रहा है? क्यों मनुष्यता लोप हो गई है.....

सुजाता ने धीरे से डरते-डरते कहा—यह सब तो विश्व-संघर्ष के कारण हैं।

और यह संघर्ष किस कारण है?

सुजाता नहीं बोली। सोमेन ने फिर कहा—सुजाता! प्रश्न का अन्त कहां है? तुम कहती हो, सब अनर्थ संघर्ष के कारण है, पर मैं

कहता हूँ, इन सब अनर्थों के कारण ही यह संघर्ष है। फिर मैं क्या करूं ? मैं क्यों उस भगवान के कार्यों में दखल दूं। मैं तो चाहता हूँ कि यह 'त्राहि-त्राहि' मचती रहे, यह अन्याय बढ़ता रहे और एक दिन यह सब दुनिया नष्ट हो जाय.....।

भगवान चाहेंगे तो यही होगा।

तो फिर प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान चाहते हैं मानव भूखा मरे, तो हम क्या कर सकते हैं।

सुजाता फिर बोली—आपसे मैं तर्क नहीं करती, पर दया-परोपकार की बात भी तो हमारे शास्त्र में लिखी है, उसी की परख करने के लिए भगवान यह अन्याय दुनिया में पैदा करते हैं।

सोमेन एकदम बोला—दया और परोपकार पाप हैं, मैं उनमें विश्वास नहीं करता।

पाप !!—सुजाता काँप उठी।

हां पाप ! जो वस्तु मनुष्य को अशक्त बनाये, जो उसके आत्म-विश्वास को खण्डित करे, जो उसे दूसरे का आश्रित बनाये वह पाप है, सहस्र बार पाप है।

सुजाता फिर कुण्ठित हुई, लेकिन दूसरे ही क्षण एक बात उसे सूझ आई, बोली—पराश्रय की बात अगर सच है, तो घर-घर में यह पाप फैला है। मैं आप पर आश्रित हूं। बच्चे हम दोनों पर आश्रित हैं।

सोमेन हंस पड़ा—तर्क तुम्हें भी आता है सुजाता; पर तुम एक भूल करती हो, जिस तरह तुम मुझ पर आश्रित हो, उसी तरह मैं तुम पर आश्रित हूँ। हम सब एक दूसरे पर आश्रित हैं, यह गृहस्थ जीवन-यापन के लिए किया गया समझौता मात्र है; परन्तु भूखे को भोजन देकर तो तुम उसे सदा के लिए निकम्मा बना रही हो। वह न भोजन के लिए प्रयत्न करेगा, न भूखा मर सकेगा, केवल हाथ पसारे गिड़गिड़ाया करेगा, सुजाता ! यह जीते-जी की मौत है, महापाप है।

सुजाता की बुद्धि पर बार-बार ठेस लग रही थी। वह बार-बार

कुण्ठित हो उठती थी। बार-बार फिर उसे कुछ सूझ जाता था। बोली—लेकिन आप भूलते हैं, स्वामी! यह उन व्यवसायी भिखमङ्गों की बात नहीं है। इन्हें तो इस सत्यानाशी दुर्भिक्ष ने मरने को विवश किया है और फिर वे सब लोग माँगने को कहाँ आ रहे हैं, वे तो भूखों मर रहे हैं.....

इसी समय सहसा अमला जागकर रो उठी। सुजाता ने लपककर उसे उठा लिया। छाती उसकी भर रही थी, आँखें उमड़ी पड़ती थीं। बच्ची को कलेजे से लगाते ही बरस पड़ी। सोमेन ने अचरज से चकित इस नारी को देखा, जिसकी आँखों में अब एक अद्भुत भय साकार होता आ रहा था—कौन जाने, एक दिन हमें भी, भूख की ज्वाला में झुलसना पड़े। कौन जाने ये बच्चे...उसी क्षण उसके सामने अखबार की तसवीरें घूम गईं। हर एक तसवीर में उसने देखा अपने को, सोमेन को और अपने दोनों बच्चों को...वह काँप उठी, तिनक उठी, बच्चे को जोर से छाती में भरकर उसने अपने होठ काट लिए कहीं सोमेन उसके आंसू न देख लें; लेकिन सोमेन ने उन आंसुओं को देखा, उन आंसुओं के स्रोत को भी देखा, फिर चुपचाप छड़ी उठाई और बाहर चला गया। जाते हुए कहा—सुजाता! तो जरा घूम आऊं। सिर भारी है, दूध न पिऊंगा। और वह चला गया। उसके बाद फिर उस रात दोनों में कोई बात नहीं हुई। सुजाता ने मशीन की तरह गृहस्थी के काम सँभाले। दूध स्वयं भी नहीं पिया। सब जमा दिया। बरतन मलें, चूल्हा लीपा, बच्चे की आँखों में काजल डाला और चुपचाप बड़े लड़के रज्जू को पति के पलङ्ग पर सुला आई। छोटी अमला को अपनी छाती में समेटकर पड़ रही। सोचती रही पति आवें तो उठकर किवाड़ खोल दे, लेकिन किवाड़ खुले पड़े रहे। लालटेन अकेली आँगन में प्रकाश फेंकती रही और जब स्वप्नों की दुनिया में स्वामी से लड़-भिड़कर कलकत्ते भाग जाने की बात से डरी हुई सुजाता ने हड़बड़ाकर आँखें खोलीं, तो दूध वाला कई आवाज़ें दे चुका था। आँगन में धौला-धौला प्रकाश

फैलने लगा था और सामने के आले में दो चिड़ियां दिन का स्वागत-गान गा रही थीं। सोमेन शायद तब स्वप्न-लोक में जापान के वायुयानों से बमों को गिरते देख रहा था और इसी कारण कभी-कभी काँपने का नाटक कर जाता था। सुजाता ने शीघ्रता से बाहर जाते-जाते पुकारा—उठो जी, दिन निकल आया है। सोमेन भी उठा, बच्चे भी उठे, घर में फिर रोज की तरह चहल-पहल शुरू हो गयी। झाड़ू-बुहारू, चौका-बासन, दातुन-कुल्ला, चाय-पानी सभी कुछ पूर्ववत चला। अखबार वाला पुकार कर अखबार डाल गया। सोमेन ने चुपचाप उसे पढ़ लिया, फिर स्नान किया, भोजन किया और दफ्तर चला गया। यह अब और दिनों की तरह आज भी हुआ, परन्तु दिल-ही-दिल में दोनों सकुचे-से रिसाये-से रहे, न सुजाता हँसी, न सोमेन ने अट्टहास किया। बच्चे खेलने के लिए लिए बाहर निकले सो निकले, किसी ने उन्हें पुकारा भी नहीं। दोनों भरे हुए थे, परन्तु जैसे ही, सोमेन आँखों से ओझल हुआ, सुजाता का कण्ठ खुल गया! चीखकर पुकारा—अरे रज्जू! अरी अमला! कहां गये तुम कम्बख्तो! सबेरा हुआ नहीं भिखमंगों की तरह बाहर निकल जाते हैं, मैं कहती हूँ, तुम्हारे नसीब में भीख मांगना ही लिखा है...अमला तब चीखती हुई आ रही थी, लपक कर उसे पकड़ लिया और तड़ाक से एक तमाचा उसके गाल पर जमा दिया, वह तड़प उठी। देर तक सांस नहीं आयी। मुँह सुर्ख हो उठा। सुजाता की आँखों में क्रोध बरस रहा था, ज़रा भी नहीं पिघली, बोली—जान से मार डालूंगी, अब बाहर निकली तो। कहाँ है वह रज्जू?

अमला चीखती ही रही, बोली नहीं।

बताती नहीं?

अमला काँपी, सहमी और भी ज़ोर से चीख उठी, फिर न जाने क्या सूझा, ज़मीन पर लेटकर जोर-जोर से हाथ-पैर पटकने लगी। बस, सुजाता यहीं कच्ची थी। अमला ने हाथ-पैर पटके नहीं और उसे हँसी

आई नहीं। बरबस हँस पड़ी और अमला को जबरदस्ती अपनी छाती में भरकर उठा लायी—चुप ! चुप !!

.....

कहां गयी थी...?

..... !

दूध नहीं पियेगी ?

बस अमला का सप्तम स्वर नीचे उतरने लगा और दोनों हाथों से आँसुओं को इधर-उधर पोंछ-पांछकर उसने सुसकते-सुसकते कहा—पिऊंगी।

बुला रज्जू को भी।

अमला ने अब शिकायत की—मुझे भइया ने माला।

कहां है वह, उसे मैं मारूंगी।

तबतक वे भी आकर मां के गले से झूलने की चेष्टा कर रहे थे अमला ने देख लिया, हँसकर बोली—दूध पी ले ! मां ! भइया आ गया।

सुजाता ने अमला को देखा, फिर रज्जू को देखा, मुस्कराई और दोनों के आगे एक-एक कटोरा बढ़ाकर बोली—पियो।

और उठी कि कल भाजी में आये दो लड्डू ला दे तभी बाहर से किसी ने पुकारा—भाभी !

सुजाता को मानो मौत ने पुकारा, काँप गई। लेकिन पुकारनेवाला अन्तू था, अन्दर चला आया; बोला—नमस्ते, भाभी !

सुजाता ने उस क्षण पृथ्वी को फटते और अपने को उसमें समाते देखा और देखकर वह बड़े जोर से हिली, लेकिन किसी तरह अपने को बटोर-बटारकर बोली—आओ, अन्तू !

आया हूं कि धन्यवाद देता चलूं।

धन्यवाद !—सुजाता के मुंह से निकला और शरीर बड़े जोर से काँपा।

अन्तू बोलता रहा—भइया दफ्तर जाते-जाते मुझे सौ रुपये दे गये थे कहते थे तुम्हारी भाभी ने रिलीफ फण्ड में दिये हैं·····

सुजाता की साँस रुक-सी गयी, आँखें चमक उठीं। उसी तरह खड़े-खड़े दीवार थाम ली। अन्तू कह रहा था—भइया ने बताया इस बार जो रज्जू का कर्ण-भेद-संस्कार करना था, वह नहीं होगा, उसी के लिए जोड़े हुए रुपये तुमने भेजे हैं।

·····

·····और भाभी! भइया वैसे बड़े अजीब आदमी हैं, कहने लगे, मैं तो दान-दून में विश्वास करता नहीं, परन्तु इस समय उनकी रक्षा न की गई तो सारे देश का साहस टूट जायेगा और युद्धकाल में यह सबसे बुरी बात है·····।

सुजाता अब भी नहीं बोली।

अन्तू ने ही कहा—मैंने कहा भइया! कुछ भी समझ लो। मतलब नाक पकड़ने से है! खैर, भाभी! जा रहा हूँ, बहुत काम है, लेकिन आज मुहूर्त्त शुभ हुआ है, घर-घर तुम्हारी चर्चा करके पैसा माँगूंगा, इसलिए तुम्हें प्रणाम करने आया हूँ।

इतना कहकर अन्तू ने हाथ जोड़े और बाहर चला गया। सुजाता अबतक उसे देख रही थी। अब एकदम जहां खड़ी थी, वहीं बैठ गई। हृदय पिघल आया। आँखों में आँसू उमड़ पड़े, पर अब उनमें विषाद नहीं—हर्ष भरा हुआ था।

: १५ :

सुनो, ओ मां !

उमा जब बाहर जाने लगी, तो उससे देखा आज भी पूजा की कोठरी खाली पड़ी है। यह एक अचरज की बात थी ! वह ठिठक गयी, घर की दासी राधा तब उधर ही आ रही थी। उससे पूछा—तुम जानती हो, राधा ! आजकल पूजा क्यों बन्द है ?

राधा ने कहा—जानती क्यों नहीं, रानी ! बच्ची को डबल निमोनिया हुआ है और डाक्टर साहब ने कहा है कि बहूजी उसके पास बैठें।

रात-दिन ?

हां, रानी ! देखती हो, वे केवल तुम्हारे लिए चाय बनाने आई थीं। आप तो पी भी नहीं।

जानती हूँ।—उमा ने विद्रूप से कहा और बाहर चली गई। उसका मन, तब शान्त नहीं था। अनेक विचार रह-रहकर उसके भीतर जाग आये थे। उसने सोचा—भाभी को आये कई वर्ष बीत गये, लेकिन एक दिन भी पूजा उन्होंने नहीं छोड़ी। हर एक आफत में वह अडिग रहीं। मेरे मना करने पर, समझाने पर भी वह हंसकर रह गईं। परन्तु आज देखती हूँ, उनका पूजा-मन्दिर सूना पड़ा है। उस लड़की के पीछे, जिसको उन्होंने कभी देखा भी नहीं, जिससे उनका कोई सम्बन्ध भी नहीं है, वह अपने पूज्य ठाकुर को भुला बैठी हैं·····यही सोचती-सोचती उमा ड्योढ़ी पार करके बाहर सड़क पर

आ गई। सुबह की सुनहरी धूप में उसकी काले पाड़ की गरम साड़ी चमक उठी, कर्णफूलों की सुनहरी झलक ने उसके सुन्दर मुख की आभा को और बढ़ा दिया। राधा ने एक बार उमा को देखा और सोचा—कितनी सुन्दर है उमा! नगर-भर में उसकी चर्चा है, सब कहते हैं वह खूब बोलती है। सुननेवाले कांप उठते हैं। उसने भी उमा को बोलते सुना है, लेकिन·····राधा सोचने लगी—उमा जब भी घर लौटती है तो खिंची-खिंची रहती है। बात-बात में तेजी। बहूजी तो उसे फूटी आंखों भी नहीं सुहातीं·····

उसे याद आया—अरे मुझे तो पूजा-मन्दिर की सफाई करनी है। इसलिए वह लौटी और शीघ्रता से पूजा के बर्तन उठा लाई। उन्हें साफ करते-करते फिर सोचने लगी। उसने जैसे घर-भर के व्यक्तियों का विश्लेषण करने का इरादा कर लिया हो। उसके हाथ काम कर रहे थे, पर मन बहूजी की ओर दौड़ गया—सुन्दरता मानो उनके हिस्से में आयी ही नहीं, पर इतनी सुघड़, इतनी नम्र मानो स्वयं जगदम्बा हों। आंखें ऊपर को उठाना जानतीं ही नहीं। वह घर को जानती हैं, घर उन्हें जानता है। पूजा-घर के अलावा वह कहीं जाती भी नहीं। यहीं से शायद कभी सड़क की झलक उन्होंने देखी हो, लेकिन पढ़ती खूब हैं। सबेरे से उठकर·····

और तभी तक हल्की-सी मधुर आवाज वहां आकर फैल गयी—राधा! राधा·····!

राधा जल्दी से उठी और अन्दर चली गई। बोली—जी बहूजी!

नन्दा उस समय कुछ घबरा रही थी। पूछा—तू डाक्टर को जानती है?

जानती हूँ।

तो बुला ला जाकर। कहना अभी चलना है।

राधा मुड़ी, नन्दा ने फिर कहा—अगर वे बाहर हों तो भेजती जाना।

अच्छा।

राधा को गये कुछ क्षण बीते थे अजित बाबू अन्दर आ गये। नन्दा के पास जाकर पूछा—क्यों बुलाया है मुझे।

नन्दा रुआसी-सी हो रही थी। बोली—डिलिरियम बढ़ता जा रहा है। न जाने क्या-क्या बोलती है। मैं तो समझ भी नहीं पाती।

अजित बाबू ने बच्ची को देखा, कहा—नन्दा, नाजुक हालत है। मैं अभी डाक्टर को बुलाता हूँ।

डाक्टर को बुलाने राधा गई है। आप जरा इसके पास बैठ जाइये। मैं रसोई-घर में हो आऊं। उमा तो कान्फ्रेंस में गई है। शाम को भी जायगी।

हां—इतना कहकर अजित लड़की के पास जा बैठे। वह जरा सीधे आदमी हैं। काम से काम, व्यर्थ का गुल-गपाड़ा उन्हें पसन्द नहीं है परन्तु वैसे जिन्दादिल हैं। गुस्सा करना नहीं जानते, परन्तु आज उस बीमार लड़की के पास बैठकर उन्हें कुछ याद आने लगा—उमा खूब बोलती है। सोशल सर्विस लीग की मन्त्रिणी है। समाज की दुर्दशा, कटुता, निरंकुशता पर बोलते-बोलते उसके नेत्र चमक उठते हैं। जनता रो-रो पड़ती है। लेकिन आज तो·····यहां आकर कुछ रुकावट पड़ गई। कमीज के नीचे कहीं कमर में कांटा-सा चुभ आया तभी एकाएक वह लड़की उठ बैठी। शोन रे मा···तुमि जाइबो ना··· आमि आछि·····

और कुछ इसी तरह कभी बंगला, कभी हिन्दुस्तानी में बड़बड़ाने लगी। अजित ने धीरे-से उसे कोली में भर लिया और फिर पलंगपर लिटा दिया। बोले कुछ नहीं। उसी समय डाक्टर आ गये। बोले—क्या हुआ, अजित बाबू ?

डाक्टर ! क्राइसिस है। अवस्था चिन्ताजनक है।

डाक्टर ने देखा और कहा—वह कहां गई। और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना पुकारा—सुनो तो, बहन।

नन्दा कहीं दूर नहीं थी। डाक्टर के पीछे-पीछे वहीं आ गई थी। आगे आकर बोली—जी।

डाक्टर ने कहा—आप कहीं जाइये नहीं। नाजुक हालत है। आपका पास रहना जरूरी है। प्लास्टर मैं बदल देता हूँ। दवा राधा के हाथ भेज दूँगा। सन्ध्या तक जरूर आराम हो जायेगा।

नन्दा ने तब चुपचाप प्लास्टर का सामान आगे रख दिया और सबेरे की तरह डाक्टर की सहायता करने लगी। अजित चुपचाप सब-कुछ देखते रहे। प्लास्टर चढ़ाकर डाक्टर जाने लगे। जाते-जाते रुके और बोले—देखिये, यह बच्ची अनाथ है। बेहोशी में इसे मां की याद आती होगी। आप इसी के पास रहिये, समझीं।

नन्दा ने धीरे से इतना ही कहा—अब न जाऊंगी।

जी, तब यह लड़की भी कहीं नहीं जायेगी विश्वास रखिये।

और इतना कहकर डाक्टर अजित के साथ बाहर चले गये। जाते-जाते उन्होंने कहा—अजित बाबू! केस सीरियस है, परन्तु बचने की पूरी आशा है।

अजित बोले—जरूर बचना चाहिए, डाक्टर। नहीं तो नन्दा का हृदय टूट जायेगा। अपने पेट के बच्चे को सभी पालते हैं, परन्तु इस तरह दूसरे के अनाथ-निराश्रित बच्चे को पालना क्या हरएक का काम है?

नहीं है, अजित बाबू! नहीं है। इसीलिए तो कहता हूँ, यह लड़की बचेगी। हम ईश्वर और धर्म को उतना नहीं जानते हैं, पर यह जरूर जानते हैं प्रेम का फल मिलता है।

अजित ने लम्बी सांस लेकर कहा—क्या ही अच्छा होता, डाक्टर यह प्रेम सभी मनुष्यों में होता, तो यह महानाश, जो आज की दुनिया पर छाया हुआ है, मनुष्य को इतना तंग न करता। आज तो, डाक्टर, आदमी न जाने क्या बन गया है। एक तरफ अन्न फेंका जाता है, कोठियों में पड़ा सड़ता है। दूसरी ओर आदमी दाने-दाने के लिए तड़प-

तड़प कर प्राण देता है। क्या सचमुच ईश्वर है, डाक्टर ?

डाक्टर बोले—ईश्वर के बारे में मेरा ज्ञान अधूरा है, अजित बाबू। परन्तु कभी-कभी शैतान के साथ उसके दर्शन मुझे हो जाते हैं।

शैतान के साथ !

हां, अजित बाबू ! शैतान के बिना ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। देखो, अगर मनुष्य का पाप मनुष्य का गला न घोंट देता, तो कैसे इस अभागी बालिका को तुम्हारी पत्नी में मां के दर्शन होते···?

अजित मुग्ध हो उठे, बोले नहीं। डाक्टर ने फिर चलते-चलते रुककर कहा—और अजित बाबू ! सुना है, आपकी बहन ने तो आज कमाल कर दिया। बंगाल के दुर्भिक्ष-पीड़ितों के लिए जो अपील उसने की, उसे सुनकर जनता चीत्कार कर उठी। मंच पर रुपयों का ढेर लग गया। स्त्रियों ने अपने जेवर तक उतार डाले।

अजित ने मुस्कराकर कहा—उमा ऐसा ही बोलती है, डाक्टर ! परन्तु मुझे तो दान देना अच्छा नहीं लगता···

डाक्टर मुड़े। एक बार अजित को देखा और फिर मुस्कराकर आगे बढ़ गये।

(२)

दोपहर हुई, उमा घर लौट आई। विजय की आभा उसके मुख पर नाच रही थी। बात-बात में खिल पड़ती थी। अजित को देखा, तो बोली—भइया ! आप नहीं आये ?

अजित हँस पड़े—हां, उमा। मैं न जा सका। सन्ध्या को चलूँगा। सुना, तू बहुत सुन्दर बोलने लगी है। कितना रुपया आया ?

पांच हजार नकद और पचास हजार के वायदे।

हां-आं···।

जी।—उमा हँस पड़ी, लेकिन जैसे ही वह अन्दर पहुँची उसका चेहरा फिर मुरझा उठा। उसने देखा, पूजा की कोठरी उसी तरह सूनी पड़ी है। आंगन बिलकुल निस्तब्ध, बिलकुल खाली है। रसोईघर में

केवल मिसराइन बैठी ऊंघ रही है और चूल्हे की लकड़ियां राख की चादर ओढ़े मानो नींद ले रही हैं। सारे घर में केवल राधा सजग थी। उसने जाना उमा आ गई है तो धोती लेकर उसके कमरे में पहुँची। बोली—खाना यहीं लाऊं, रानी ?

भाभी कहां हैं ?

बच्ची के पास हैं। उसे बहुत तकलीफ है। डाक्टर कह गये हैं कि वह उसके पास रहें।

तब वह नहीं आयेंगी ?

नहीं, रानी।

खाना भी नहीं खायेंगी ?

कल से कुछ नहीं खाया। अभी-अभी बाबू जबरदस्ती रोटी खिला गये हैं। जब वह आप वहां बैठे तभी वह हिल सकीं।

हूँ—उमा ने धीरे से कहा और सोच में पड़ गई।

खाना ले आऊँ ?

हाँ।

राधा बाहर चली गई और वह धोती बदलती-बदलती सोचने सोचने लगी—बङ्गाल के अनाथ बच्चों का पहला जत्था जब इस नगर में आया था, तभी नन्दा ने कहा, एक बच्चे को तो मैं पाल लूंगी।

उमा बोली थी, नहीं भाभी। ऐसा नहीं होगा।

क्यों ?—नन्दा ने पूछा था।

क्योंकि दूसरों के बच्चों को पालना क्या आसान है ? उतनी ममता क्या हम में है ? इससे अच्छा तो यही है, आप रुपये भेज दें।

लेकिन वह नहीं मानी। अजित ने कहा—नन्दा अपने ऊपर उसे बुला रही है। मैं कुछ नहीं जानता।

उमा खिसियाकर रह गई थी। वह लड़की आई और आते ही कुछ दिनों में बीमार पड़ गई। कई दिन तो वह उनकी बोली भी नहीं समझती थी। अत्यन्त रूपवती भी नहीं थी, जो किसी की आंखें आप ही

उसकी ओर उठ जातीं। विपत्ति के थपेड़ों का भी उस पर ज्यादा असर नहीं था; परन्तु मां-बाप और वतन के अभाव ने उसे जीवनहीन-सा बना दिया था। इसी कारण उमा उसकी ओर विशेष तौर से आकर्षित नहीं हुई, खिंची-खिंची रही; लेकिन आज उसकी विचार-धारा ऊबड़-खाबड़ भूमि में बह पड़ी। समतल तो कहीं था ही नहीं, इसीलिए प्रवाह में गति भी नहीं थी। इतने में राधा भोजन की थाली ले आई, जैसे उमा को रास्ता मिला, बोली—तुमने खाया, राधा ?

अभी नहीं।

अच्छा, तो तुम जाओ खाओ। मुझे अब किसी चीज की जरूरत नहीं है। यह कहकर उमा बाथ-रूम में चली गई। राधा को कुछ नया-नया लगा, पर उमा लौटी तो वह अन्दर नहीं गई। जबतक उमा ने चुपचाप भोजन किया, वह उसे देखती रही, बोलती रही—ऐसा जान पड़ता है, रानी, यह बच्ची पिछले जन्म में बहूजी की मां थी।

उमा नहीं बोली।

राधा कहती रही—अगर ऐसा नहीं होता, तो वह रात-दिन भूखी-प्यासी रहकर उसकी देख-भाल कैसे करतीं ? यह तो कर्जे का भुगतान करना है।

उमा अब भी नहीं बोली। एकटक राधा को देखती रही। क्षणभर के लिए उसकी नजर राधा से जा मिली। राधा कांप उठी। बोली—रोटी लाऊं, रानी ?

भारी स्वर में उमा बोली—नहीं।

और फिर चुपचाप बर्तन पैर से सरका दिये। राधा उन्हें उठाकर ले गई और वह हाथ-मुंह धोकर सोफे पर लेट गई; परन्तु नींद नहीं आई। उसे फिर कान्फ्रेंस में जाना था। आज की सफलता पर उसे गर्व था, लेकिन नन्दा भाभी की बात सोचते-सोचते न जाने क्यों वह सुस्त पड़ जाती थी। इसीलिए बड़ी देर तक उसे विचारों की भूल-भुलैयां से निकलने का कोई रास्ता नहीं मिला। किताब उठाकर पढ़ना

चाहा; परन्तु प्रत्येक लाइन के बीच में नन्दा की सूरत उसे नजर आने लगी। चित्रों में तो प्रत्येक नारी नन्दा थी और प्रत्येक बच्चा वह अनाथ बालिका। चुपचाप लेटकर आंखें मींचती तो स्वप्नों की धुँधली दुनिया में भी वे ही चित्र उसकी कल्पना के चित्रपट पर उभर आते। बार-बार वह चौंक-चौंक उठती। कोई पुकार उठता—नन्दा, ओ नन्दा....

वह खीझ उठती—भाभी ने तो मुझे तङ्ग कर दिया।

इसी तरह समय बीतता गया और उसने फिर कान्फ्रेंस में जाने की तैयारी की। सारे घर में एक अजीब सन्नाटा-सा उसे लगा, वह चुपचाप भाभी के कमरे के पास गई—केवल लड़की कभी-कभी बड़बड़ा उठती थी, मानो मौत दुनियावालों की हठधर्मी पर बड़बड़ा रही हो। उस सन्नाटे में नन्दा शान्त चित्त पलङ्ग की पट्टी पर सिर रखे बैठी थी, कभी उठती तो बच्चों का कपड़ा ठीक कर देती, फिर बुझे हुए कोयले लहका देती....

देखकर उमा ने चाहा वह अन्दर जाये; परन्तु गई नहीं। शीघ्रता से बाहर निकल गई। पूजा की कोठरी की ओर भी नहीं देखा। भइया से भी नहीं बोली। चुपचाप चली गई, चलती गई, मानो उसके पास कुछ अमूल्य वस्तु थी और कोई छीननेवाला पीछे लगा था। दूर से जब कान्फ्रेंस का पण्डाल नजर आया तो प्राण जैसे लौट आये। फिर भी अन्दर-ही-अन्दर कांटा कहीं चुभ ही रहा था। हंसते-हंसते भी सी-सी कर उठती थी। लेकिन वह जानती कुछ भी नहीं थी। बीज में अंकुर फूटता है, तभी दुनिया जानती है, नहीं तो असंख्य बीज पृथ्वी के गर्भ में ही नष्ट हो जाते हैं। कौन उन्हें देखता है? उमा के भीतर भी विचारों के बीज में अंकुर नहीं फूटा था, इसीलिए वह इतनी आलोड़ित होने पर भी अपने मन के चोर को नहीं पहचान सकी थी।

(३)

सारी जनता पागल-सी हो उठी। सभी की दृष्टि उमा पर केन्द्रित थी। तूफान के थपेड़े के समान बोलने वाली उमा उस समय अद्भुत

रूप से शान्त थी। वह धीरे-धीरे बोल रही थी; परन्तु उसकी वाणी में ओज था, कम्पन था। वह सीधे मस्तिष्क पर जाकर टकराता था। वह कह रही थी—सबेरे तुम फफक-फफक कर रोये थे। उन अभागों की वेदना ने तुम्हें चलायमान कर दिया था और तुमने समझा था, मैं उनके दुःखों की मूर्तिमती प्रतिमा हूँ। उनका दुःख मेरी वाणी के रूप में बहा चला जा रहा है। मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूं, परन्तु मैं समझती हूँ...

और क्षणभर के लिए यहां आकर उमा अटक गई। उसे शब्द नहीं मिल रहे थे। उसे अपने पर आप ही अचरज हो आया वह किधर बहक गई; परन्तु दूसरा क्षण बीता वह संभल गई और तीव्र होकर बोली—परन्तु मैं समझती हूं, उस उद्देश्य की पूर्ति, जिसके लिए मैंने अपना हृदय आपके सामने निकालकर रख दिया था, विचारों में नहीं है। मर्मस्पर्शी भाषण देकर और सुनकर वह काम समाप्त नहीं होजाता विचार कभी अन्तिम सीमा नहीं है। वह केवल रहबर है।उसका अन्त तो काम में है। बिना काम का विचार गर्भपात के समान है...

उमा फिर चौंकी, लेकिन अबकी बार जनता ने उसकी रक्षा की। तालियों की गड़गड़ाहट से हाल गूंज उठा। उसकी वाणी में भी तेज़ी आगई।

तब मैं कहती हूँ, हम अपने को टटोलें। क्या हम ठीक रास्ते पर हैं ? क्या हम अपने विचारों को कार्य में परिणत करते रहते हैं। कितना अच्छा होता, जो हम यह सब कर पाते ? मैं अपनी बहनों से कहती हूँ हम सब मिलकर वहां दौड़ चलें, जहां शैतान का कोप नङ्गा नाच रहा है, जहां मनुष्य अपने हाथों से मनुष्य का गला घोंट रहा है।-जहां मां बच्चे को, बाप बेटे को, पुत्र माता-पिता को, पति पत्नी को, भाई-भाई को एक-एक दाने के लिए तड़पा-तड़पा कर मरने को विवश कर रहा है। जहां पीड़ा,वेदना,व्यथा सब इकट्ठी होकर जीवन और मानवता को आत्म-हत्या करने के लिए मजबूर कर रही हैं। जहाँ अन्न के गोदाम भरे पड़े हैं और मनुष्य भूखा मर रहा है। वहाँ जाकर हम, हम जो जगन्माता.

हैं, जगदम्बा हैं, उन चोर गोदामों वाले, उन ऐशोइशरत की मौजों में बहने वाले मनुष्यों के सामने जाकर उनके कृत्यों का भण्डाफोड़ करें तो क्या वे लज्जित न होंगे, तो क्या वे हमारी तरह अपने भाइयों को बचाने को तैयार न हो जायंगे·····?

क्षणभर के लिए वह फिर रुकी, परन्तु अब पण्डाल में तालियाँ नहीं बजीं। एक गम्भीर सन्नाटा-सा छाकर रह गया। वह फिर बोली—मैं जानती हूँ, इस मार्ग में कितनी बाधाएं हैं, परन्तु बाधाओं की चिन्ता क्या काम करने से रोक सकती है? उस दर्द की पीड़ा क्या बाधाओं की पीड़ा से कम है? हम उनको मज़बूर नहीं कर सकतीं, तो क्या स्वयं भी कुछ नहीं कर सकतीं? हम उन पीड़ित बच्चे-बच्चियों को अपनी गोदी में छिपा सकती हैं। हम भारत की अखण्डता का दावा करते हैं। इस सारे हिन्दुस्तान के लिए, वह प्रान्त क्या माने रखता है? देखते-देखते हम पीड़ा, वेदना, व्यथा सबको चूर-चूर कर देतीं, लेकिन...

सब बुत की तरह स्थिर होकर सुनते रहे। कोई नहीं बोला—कोई नहीं टसका। लेकिन तभी सहसा मंच पर हलचल मच गई। उमा बोलते-बोलते अपनी कुरसी पर आ बैठी। उसकी आँखें भर आईं बोली रुँध गई।

सभानेत्री बोलीं—क्या बात है, मिस उमा!

उमा ने कहा—अचानक हृदय में दर्द उभर आया है। मैं जा रही हूँ।

मञ्च पर सभानेत्री खड़ी हुई और उमा पीछे निकलकर घर लौट आई। उस समय काफी अँधेरा होचुका था। घर में सब स्थानों पर सदा की भाँति बिजली के प्रकाश और अन्धकार का विचित्र मिलन था। वह स्वयं जानना चाह रही थीं उसे क्या होगया है? हृदय में बार-बार टीसें क्यों उठने लगतीं हैं? वह जरा भी स्थिर होने की कोशिश करती है, तो विचार बड़ी दूर तक उसे खींच ले जाते हैं। क्षण-भर के लिए तन्मय होकर वह उनमें डूब जाती है, तो दूसरे ही क्षण ऐसी चिहुंक पड़ती है जैसे पैर आग के सुलगते हुए अंगारों पर पड़ गया है।

झुँझला पड़ती है फिर कहती है—यह हुआ क्या ? मानो भीतर ही कहीं मन से प्रश्न करती है—क्यों, रे क्यों ? यह हुआ क्या ?

और उत्तर की प्रतीक्षा न करके वह स्वयं ही उसका विश्लेषण कर बैठती, परन्तु मन तो बड़ा पापी है न। उसने उसे नन्दा के कमरे में ले जाकर ही छोड़ा·····नन्दा उसी तरह पट्टी पर सिर रखे बैठी है। उसके नेत्रों में आशा और निराशा का द्वन्द्व है। वे बच्ची के चेहरे पर स्थिर हैं। वह बच्ची क्षण-क्षण में जागकर बोल रही है—शोन रे मा···

नन्दा करुणा से भरकर कहती है—मुन्नी, मेरी बच्ची·····

सोचते-सोचते उमा का हृदय डूबने लगा। वह कपड़े पहने ही सोफे पर लुढ़क पड़ी थी। उसने कहा—उफ ! कितनी पीड़ा है मेरे अंदर ! परन्तु विचार तो पीड़ा की परवाह नहीं करते। वे तो बढ़ते गये सो बढ़ते गये। उनके साथ ही साथ, 'शोन रे मां !'—यह विचित्र आवाज असंख्य रूपों में उसके कानों में गूँजने लगी। धीरे-धीरे उस गूंज का कम्पन भयंकर वेग से बढ़ने लगा। वह उसे सह न सकी। इस भयंकर आवाज ने उसके सारे शरीर को हिला डाला। वह स्वयं चिल्ला उठी—सुनो ओ मां !

यह शब्द उस घर में चारों ओर गूँज उठा। राधा अचरज से काँपकर उमा के कमरे की ओर भागी।

नन्दा ने भी सुना। सुनकर राधा को पुकारा—राधा ! कौन बोलता है ?

राधा ने कहा—उमा है।

उमा ? उमा क्या लौट आई ?

जी। वह अपने कमरे में बेहोश पड़ी है।

उमा बेहोश हैं—नन्दा कांप उठी। उसने शीघ्रता से कहा—राधा ! तू उन्हें बुला, मैं जाती हूँ। बच्ची जरा सो रही है। हे भगवान्·····

और वह भागी-भागी उमा के कमरे में आई। उसने देखा—उमा सोफे पर अचेतन-सी लेटी है, जैसे किसी द्वन्द्व युद्ध में बुरी तरह थककर

उसने सब चेतना खो दी हो। नन्दा ने पास बैठकर धीरे-धीरे उसका सिर उठाकर अपनी गोदी में रख लिया। उमा एकदम चौंक पड़ी—कौन ?

नन्दा ने प्रेम से कहा—मैं हूं, उमा ! उठो।

उमा बोली—भाभी तुम हो !

हां।

बच्ची कैसी है ?

अब ठीक है।

और फिर उमा चुप हो गई। नन्दा ने धीरे-धीरे उसका माथा सहलाया। उमा को लगा, जैसे जीवन लौट रहा है। वह धीरे-धीरे भाभी के दोनों हाथ परे हटाकर उठ बैठी।

नन्दा ने स्नेह से भरकर पूछा—क्या हुआ था, रानी ?

उमा मुस्कराई—स्वप्न देख रही थी।

लेकिन—नन्दा बोली—तुम बड़े जोर से चिल्लाई थीं। 'सुनो ओ मां' और वह स्वर ठीक उस बच्ची जैसा था—मानो उसकी बड़ी बहन बोली हो।

सच—उमा जैसे वहीं गड़ चली। चाहा नन्दा यहां से उठकर चली जाती। लेकिन नन्दा बोली—आजकल इतनी सर्दी है, परन्तु तुमने स्वेटर भी नहीं पहना। क्या शेर का मांस खाती हो ?

भाभी···।

नन्दा हंस पड़ी। उमा दीन हो रही थी, पर भाभी को हंसते देख कर वह भी हंस पड़ी। फिर सहसा एकदम रुक कर बोली—सुनो भाभी·····।

नन्दा बोली—कहो क्या कहती हो ? सुना बहुत मार्मिक अपील थी तुम्हारी। अच्छा ही है, करोड़ों अनाथ और निरीह बच्चे आशीर्वाद देंगे तुम्हें।

भाभी···।

हां, कहो भी तो ।

सोचती हूं उन करोड़ों आत्माओं के आशीर्वाद से तुम्हारी एक बच्ची का आशीर्वाद ज्यादा कीमती है ।

नन्दा चौंकी—क्या पहेली बुझाने लगी, उमा ?

पहेली नहीं, भाभी । सीधी बात है, इसलिए मैं कहती हूं, आज से मुन्नी की देख-रेख मैं करूंगी ।

और कहती-कहती उमा कातर होकर नन्दा के पैरों के पास आ बैठी—मना मत करना भाभी ।

: १६ :

अरुणोदय

जैसा कि सदा होता था, निशिकान्त के तीव्र स्वर का उन पर तनिक भी असर नहीं हुआ। उन्होंने बड़ी शान्ति से फ़ाइल उलटते हुए कहा—बाबू निशिकान्त, आप युवक हैं, आपके लहू में गरमी है, किसी दिन मैं भी युवक था, मेरे लहू में भी गरमी थी। सच कहता हूं, गोरे अफ़सर का अत्याचार देखकर मैं कांप उठता था। जी में आता था कि उसके हाथ से कोड़ा छीन कर उसे ही पीटना शुरू कर दूं। वह सलाम का भूखा था। सड़क पर चलते समय जो भी उसे सलाम न करता उसी पर वह बेरहमी से कोड़े बरसाने लगता। यही देख और सुनकर मैं क्रोध से भर उठता था। मैं चाहता तो उसे पीट सकता था, मुझमें शक्ति थी, परन्तु...परन्तु बाबू निशिकान्त! मैं ऐसा करता, तो क्या तुमसे बातें करता होता? मुझे जेल होती, सम्भवतः मार दिया जाता, और मेरे बच्चे, मेरी स्त्री, मेरा सारा परिवार दर-दर का भिखारी होता...।

निशिकान्त ने दांत पीस लिये, कहा कुछ नहीं। वे ही कहते रहे। वे लगभग ५० वर्ष के थे, परन्तु बाल अभी तक काले थे, आंखें चमकती थीं। इसी दफ्तर में अपनी नौकरी के पच्चीस वर्ष पूरे कर चुके थे। उनका नाम था बाबू हरिचन्द। हँसमुख, प्रेमी और मिलनसार। कभी क्रोध नहीं आता था और जिन्हें क्रोध आता था उनको वे ऐसी करुण-दृष्टि से देखते कि क्रोधी पानी-पानी हो उठता था। समय की उन्हें

विशेष चिन्ता नहीं थी। सबसे पहले आते और लौटते तो रात पड़ जाती। सदा यही कहते, गुलामी पाप है, पीस देती है, परन्तु क्या करें, भगवान् की यही इच्छा है। वह चाहेगा तभी कुछ होगा। अब भी उन्होंने कहा—धीरे-धीरे सब-कुछ ठीक हो जावेगा,। समय सब-कुछ करा लेता है। आज तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कोई गोरा किसी हिन्दुस्तानी को गाली दे सकता है। कोड़े मारना तो दूर की बात है।

निशिकान्त का सब्र जवाब दे रहा था, उसने तीव्रता से कहा—समय कुछ नहीं करता, उससे कराया जाता है।

हां, हां—बाबू हरिचन्द ने कहा—ठीक है, कराया जाता है। भगवान् सब-कुछ करा लेते हैं।

आह ! भगवान् नहीं, आदमी कहिये, आदमी, बाबू साहब।

आदमी ? आदमी ही कह लीजिये। भगवान् उसी के द्वारा सब-कुछ करा लेते हैं। वह भगवाम् के हाथ का यन्त्र हैं.....।

यन्त्र...!—निशिकान्त का मन घुटने लगा, धुआं जैसे छाती से उठकर मस्तिष्क में भर चला हो, परन्तु वह क्या कहे और किससे कहे ! इसीलिए मन मार कर वह भी फाइलों में उलझ चला, लेकिन कहते हैं 'शक्करखोरे को शक्कर और मूंजी को टक्कर' सब जगह मिल जाती है। उसने फाइल उठाई और बाबू हरिचन्द के पास आकर बोला—आप समय की बात कह रहे थे, मुझे बताइये मैं क्या करूं ?

परम शान्त मुद्रा में वे मुस्कराये—क्या बात है ?

बात क्या होती, वही मंगला चपरासी की ग्रेचुइटी का केस है। तीन वर्ष से बड़े दफ्तर में पड़ा हुआ है। और अब वे कहते हैं इसे समाप्त कर दीजिये।

यह केस समाप्त हो चुका है।

क्योंकि बड़े दफ्तर के बाबुओं की ऐसी ही इच्छा थी।

निशिकान्त को फिर तैश आने लगा। उसने कहा—मैं जानना चाहता हूं उनकी इच्छा का इतना मूल्य क्यों है ?

बाबू हरिचन्द फिर मुस्कराये और बोले—बाबू निशिकान्त, बड़े दफ्तर के बाबू बड़े हैं। वे हमारे अन्नदाता हैं, हमारे भाग्य के निर्णायक हैं, उनकी कलम क्षण भर में हमारी उन्नति को अवनति में पलट सकती है। तुम कारण की बात कहोगे परन्तु भैया! कारण ढूंढ निकालना कोई कठिन काम नहीं। (सहसा धीमा स्वर कर लेते हैं) और निशिकान्त, अब तुम्हारा मामला है। वे चाहें तो तुम्हें सीनियर बना दें, चाहें तो उस्मान को। सीनियर होते ही नया ग्रेड मिलता है, वेतन बढ़ता है। ऐसी अवस्था में कौन मूर्ख होगा जो उनका विरोध करके अपने उज्ज्वल भविष्य का नाश करेगा।

निशिकान्त ने लापरवाही से कहा—मुझे अपने भविष्य की चिंता नहीं है। उसके लिये मैं अपने ऊपर विश्वास करता हूं, दूसरे पर नहीं।

तब तुम मूर्ख हो—जवाब मिला।

हो सकता है—निशिकान्त ने कहा—परन्तु इस केस को समाप्त करने से एक गरीब परिवार की आशाओं पर तुषारापात होता है। जब आप भविष्य को बिगाड़ने और सुधारने की बात कहते हैं तो क्या यह नहीं सोचते गरीब की आह में बड़ी शक्ति होती है, वह भविष्य की उज्ज्वल रेखा को तनिक-सी देर में काली कर सकती है?

बाबू हरिचन्द ने उसी शान्ति से कहा—लेकिन बाबू निशिकान्त, आप क्यों डरते हैं? अगर किसी के भविष्य की उज्ज्वल रेखा काली होगी तो वह बड़े दफ्तर के बड़े बाबुओं की होगी, हमारी नहीं। सच मानो, हमें उन लोगों के भविष्य की ज़रा भी चिंता नहीं है।

यह कहकर उन्होंने निशिकान्त की ओर अद्भुत मुद्रा से देखा। उनके मुख पर हँसी झलक रही थी। वह हँसी जो मात्सर्य्य, व्यंग्य और विजय से पूर्ण थी, मानो कहते थे—निशिकान्त! सच मानो, बड़े दफ्तर के बाबुओं से हमें बड़ी नफरत है। उनके पतन से हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। इसीलिये ऐसे कारणों को रोकने की हम जरा भी चेष्टा नहीं करते।

निशिकान्त ने सब कुछ देखा और समझा। उसका मस्तिष्क चकराने लगा। उसे नौकरी करते हुए पन्द्रह साल बीत चुके थे परन्तु न जाने क्यों इधर वह चिन्तित और व्यग्र होता आ रहा था। ऐसी सब बातों से उसे घृणा होने लगी थी और वह इस दम घोटनेवाले वातावरण से दूर, बहुत दूर भाग जाना चाहता था, लेकिन.....

बस यही 'लेकिन' उसके रास्ते का रोड़ा बनकर अटक पड़ा था। इस 'लेकिन' में आदर्श के लिए जीविका छोड़ने का प्रश्न था। उस भविष्य का प्रश्न था जहां सरकार की पेन्शन पाकर बुढ़ापे में आराम और आसाइश का जीवन बिताया जाता है, परन्तु यह भविष्य केवल शारीरिक ही नहीं, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का हनन करके प्राप्त किया जाता है। मानो मनुष्य मनुष्य नहीं है। न उसमें चेतना है, न बुद्धि है। न उसकी आशाएँ हैं, न आकांक्षाएँ, बस वह केवल यन्त्र मात्र है.....

सहसा उसे याद आ गया, उसके साथी ने अभी-अभी कहा था—मनुष्य भगवान् के हाथ का यन्त्र है, और भगवान् जो कुछ भी चाहते हैं मनुष्य को करना पड़ता है। उसके मन ने तर्क किया—लेकिन भगवान् क्या चाहते हैं इसका निर्णय कौन करता है ?

उत्तर भी स्वयं ही मस्तिष्क में आ गया। जो कुछ होता है वही भगवान् चाहते हैं। यह उत्तर सोचकर उसे बड़ी भयानक हँसी आई। उसने फ़ाइलों को परे सरका दिया। कुरसी पीछे हटाई और पैर मेजपर रखकर लुढ़क गया।—हाँ, तो जो कुछ होता है वही भगवान् चाहते हैं, और जो भगवान् चाहते हैं वही होता है। मनुष्य तो उसके हाथ का यन्त्र है, जिधर चाहा जैसे चाहा, घुमा दिया .....।

तभी छोटे बाबूने आकर कुछ काग़ज़ उसके सामने फेंक दिये, बोले, —देखो।

क्या है ?

तुम्हारा केस है, और बड़े बाबूने जो कुछ लिखा है वह तुम्हारे विरोध में जाता है।

जाने दो, मुझे उसकी चिन्ता नहीं है।

लेकिन यह उसकी नीचता है। वह इस प्रकार मुसलमानों का भला बनना चाहता है।

पर यह उसकी भूल है। वे लोग इसे निकाल कर दम लेंगे।

निशिकान्त सब-कुछ समझ रहा था। उसने धीरे से कहा,—मैं समझता हूँ उसका यह विश्वास है उस्मान मुझसे सीनियर है।

नहीं, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कौन सीनियर है। बात केवल बड़े दफ्तर के रूलिंग (निर्णय) की है। ऐसी अवस्था में उसका कर्त्तव्य है वह तुम्हारा पक्ष ले।

क्यों ?

क्योंकि तुम हिन्दू हो और मुसलमानों ने हम लोगों पर अत्याचार करने में कुछ भी नहीं उठा रखा है। प्रान्तीय स्वशासन के बाद तो उन्होंने नौकरियों पर एक प्रकार से धावा बोल दिया है।

निशिकान्त सहसा बोलते-बोलते रुक गया। वह हिन्दू है और उसके हिन्दूपन को लेकर ही ये सब बाबू उससे सहानुभूति प्रकट करने आये हैं। इसलिए कोई ऐसी बात कहना जिससे उनका मन दुखी हो ठीक न होगा।

छोटे बाबू फिर बोल उठे—तुम लाहौर क्यों नहीं जाते ?

निशिकान्त अब चुप नहीं रह सका। उसने दृढ़ता से कहा—नहीं। मैं कहीं नहीं जाऊँगा। अगर मेरा पक्ष प्रबल है तो मुझे किसी के आगे हाथ पसारने की जरूरत नहीं है और अगर उस्मान का पक्ष ठीक है तो उसे सीनियर बनाना ही चाहिए। मुझे इस बात का तनिक भी दुख नहीं होगा।

छोटे बाबू कच्ची गोली नहीं खेले थे। बोले—तुम्हें दुख नहीं होगा लेकिन हमें तो होगा। आज की दुनिया में न्याय चुपचाप बैठने से नहीं

मिलता। जानते नहीं वह कितनी कोशिश कर रहा हैं, कितने अफसरों से मिल चुका है ?

सब-कुछ जानता हूँ, यहाँ तक कि उसने अपना आदमी लाहौर भेजा है।

तो फिर...?

तो फिर यही कि शायद उसे अपने पक्ष की निर्बलता का विश्वास है।

बेशक उसका पक्ष निर्बल है, लेकिन कोशिश कर के वह उसे प्रबल बना लेगा। तुम न्याय की बाट देखते रहना। परन्तु हम यह नहीं होने देंगे। बात केवल निशिकान्त की नहीं है, हिन्दू-मुसलमान की है।

और इतना कह कर वे चले गये। निशिकान्त ने फिर चिट्ठियों को सँभाला। सामने डाक का ढेर लगा था। उसे सब पर टिप्पणियां लिखनी थीं। उसने कलम उठाई और लिखना आरम्भ कर दिया, लेकिन मस्तिष्क.....वह तो काम से दूर, बहुत दूर, उसके भविष्य की चिन्ता में लगा था। निशिकान्त किसी भी तरह उसे शान्त न कर सका। उसने सोचा, यदि मैं सीनियर हूँ तो वे रोकते क्यों हैं ? क्या मनुष्य सचमुच इतना गिर गया है कि वह स्वार्थ के लिए न्याय का गला घोंट दे ? नहीं, नहीं, परमेश्वर यदि है तो ऐसा नहीं होगा। वह कभी अन्याय नहीं होने देंगे.....सहसा धक्का लगा—परमेश्वर ! कैसी मूर्खता की बातें हैं ? ईश्वर-परमेश्वर कहीं कुछ नहीं है। मनुष्य जब निर्बल था, तब ईश्वर का जन्म हुआ था। वह मनुष्य की निर्बलता की स्वीकारोक्ति मात्र है। पर आज तो मानव शक्तिशाली है। उसने प्रकृति को जीता है। उसे अब परमेश्वर की जरूरत नहीं है...

तभी एक दूसरे मित्र आये और धीरे से बोले—कुछ सुना तुमने ?

क्या ?

रात मस्जिद में मीटिंग हुई थी।

किनकी ?

उन्हीं लोगों की। डिप्टी, ओवरसियर, स्टोरकीपर सभी थे। तुम्हारे हमवतनी भी थे। डिप्टी साहब ने साफ कह दिया अगर निशिकान्त को स्टोरकीपर बना कर भेजा तो मैं एक महीने में नालायक करके निकलवा दूँगा। इस पर स्टोरकीपर ने कहा—जी, निशिकान्त आसानी से नालायक होने वाला नहीं है। जूनियर होकर भी उलझे हुए केसों पर वही टिप्पणी करता है।

डिप्टी साहब तब मुस्कराये, बोले—चोरी के इलजाम में डिसमिस करा देना तो मामूली बात है।

सच, ऐसा कहा उन्होंने ?—निशिकान्त ने अचरज से पूछा।

हाँ।—मित्र विजय-गर्व से भर कर बोले।

बड़े दुष्ट हैं।

देख लो। तुम इनकी प्रशंसा करते नहीं थकते और वे हैं कि तुम्हारी जड़ काटने के लिये कटिबद्ध हैं।

निशिकान्त मुस्कराया—जड़ कौन किसकी काट सका है ? जो ऐसा सोचते हैं परन्तु.....।

साथी बीच ही में बोल उठे—मूर्ख तुम हो, निशिकान्त। तुम्हें समय रहते चिन्ता करनी चाहिये। मेरा काम तुम्हें चेतावनी देना था। और मुझसे तुम्हारी कोई सहायता हो सकती हो तो मैं तैयार हूँ।

आपकी कृपा है, मुझे आप पर भरोसा है।

साथी मुस्कराकर चले गये और मस्तिष्क के बवंडर को रोकने में असमर्थ निशिकान्त फिर चिट्ठियों पर झुका। बीच में कई बार बड़े बाबू ने बुलाया, साहब ने सलाम भेजा, साथी केस पूछने आये और गये। दफ्तर का काम तेजी से होता रहा और उसकी विचार-धारा भी तेजी से बहती रही कि सन्ध्या होते-होते उस्मान अजीब अदा से मुस्कराता हुआ आया। बोला—अरे भई निशिकान्त ! सुना वह केस फिर आ गया है।

निशिकान्त भी मुस्कराया।—कौन-सा केस ?

वही मेरा और आपवाला।

तब।

क्या लिखा है?

सरविस-बुकें मांगी हैं।

यार तुम्हारी जीत है।

कैसे?

पर्सनल असिस्टेंट सिख है।

सहसा निशिकान्त उठ खड़ा हुआ और पूर्ण विश्वास के साथ उसने उस्मान को देखते हुए कहा—मैं मानता हूं, तुम मेरा विश्वास नहीं करोगे। इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। परिस्थिति ही ऐसी है, परन्तु मैं दिल की बात कहता हूं। मैं न्याय से ऊँचे पद का हकदार हूं तो ठीक है अन्यथा मैं सपने में भी तुम्हें गिराने की बात नहीं सोच सकता। तुम्हें क्या, किसी को भी नहीं। मैंने आज तक साहब से इस बात का ज़िक्र तक नहीं किया, जब कि तुम जानते हो उन लोगों से मेरे सम्बन्ध कितने गहरे और मीठे हैं। मैं अपने लिये किसी के आगे हाथ फैलाने से भूखा मर जाना कहीं अच्छा समझता हूं। इन्सान इन्सान के आगे हाथ फैलाये, इससे गन्दी बात और हो ही क्या सकती है?

निशिकान्त का स्वर इतना स्पष्ट और बेलाग था कि कोई भी निष्पक्ष आदमी उसकी ईमानदारी से इनकार नहीं कर सकता था। उस्मान मुस्कराया, उसकी आँखें चमक उठी। क्षण भर के लिए विश्वास ने मानो अविश्वास को पराजित कर दिया हो। उसने कहा—सच, निशिकान्त! मैं भी यही चाहता हूं।

और फिर सहसा बात को आगे बढ़ाये बिना वह चला गया। निशिकान्त का मन भर आया था। क्षणभर उसने जाते हुए उस्मान को देखा, फिर जल्दी-जल्दी चिट्ठियां छांटने लगा। छः बजनेवाले थे और उसका मन काम करने को नहीं कर रहा था। उसने दफ़्तरी को पुकारा—मैं जा रहा हूं। कमरा बन्द कर दो।

और वह लौट चला। चलते-चलते विचारों का एक तुमुल प्रवाह मस्तिष्क में भर आया। कुछ पुरानी बातें नई होकर सामने आ गईं। उस दिन वह पत्नी के साथ नहर के किनारे घूम रहा था। वातावरण में मस्ती थी;उनके मन में, और उनकी बातों में मस्ती थी। प्रेम और मुहब्बत की बातें करते-करते वे भविष्य के सुनहरे सपने देखने लगे थे, सहसा निशिकान्त का मन विषाद से भर उठा। उसने दर्द भरे स्वर में कहा—रजनी, कैसी अचरज की बात है! मुझे नौकरी करते हुए बारह वर्ष बीत गये, परन्तु मैंने एक क्षण के लिये भी इसे पसन्द नहीं किया। मैं इसे अपने जीवन का श्राप समझता हूं! प्रति क्षण यहां मनुष्य मनुष्य का गला घोंटता रहता है। प्रति क्षण दासता की कड़ियां कसती रहती हैं। प्रति क्षण हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच, जाट-बनिया, सिख-असिख, पंजाबी-नॉनपंजाबी, ब्राह्मण-बनिया के रूप में मनुष्य की नीचता, तृष्णा और घृणा फूलती-फलती रहती है।

रजनी ने पति की ग्लानि को अनुभव किया, बोली—ऐसी बात है तो नौकरी क्यों नहीं छोड़ देते।

निशिकान्त मुस्कराया मैं भी यही पूछा करता हूं, मैं नौकरी क्यों नहीं छोड़ देता। परन्तु, रजनी, पेट की पुकार रास्ते का रोड़ा बन जाती है। जो हितैषी हैं वे पूछ बैठते हैं—करोगे क्या? देखती आँखों आज की दुनिया में भरी-पूरी रोज़ी को लात मारना मूर्खता की सीमा है।

लेकिन, रजनी बोली,—आपको भी पेट की चिन्ता है! आप तो लिखते हैं।

लिखता हूँ, पर लिखने से पेट नहीं भरता। पूँजीपतियों के देश में लेखक की दशा मज़दूर से भी बदतर है।

अपना कुछ काम कर लो।

उसके लिये पूँजी की आवश्यकता है।

रजनी ने क्षण भर सोचा, बोली—मेरे पास जो गहने हैं उन्हें बेच दो। युद्ध के कारण सोना तेज़ है। जब कभी सस्ता होगा,बन जावेंगे।

और न भी बने तो क्या उनके बिना जिया नहीं जाता !

तर्क इसी तरह आगे बढ़ता गया और जैसा कि तर्क का गुण है, बिना किसी निर्णय के समाप्त हो गया, और निशिकान्त को फिर अम्मा की बातें याद आ गईं। वह सदा हवा में बोलती है—छोड़ दे नौकरी। अपने घर चल। भूखा कौन मरता है। भगवान् सबको देते हैं।

निशिकान्त तर्क करता—नहीं अम्मा ! भगवान उन्हीं को देते हैं जो मेहनत करते हैं।

—तो तू क्या लुंजा है या लँगड़ा ? इतना पढ़ा है। यहां नहीं मन लगता तो स्कूल में नौकरी कर ले !

निशिकान्त हँसकर रह जाता। और यही अम्मा दूसरे दिन कहती—ना, बेटा ! नौकरी नहीं छोड़ा करते। दुनिया भूखी मर रही है। लोग नौकरी के लिये तरसते फिरते हैं और तू लगी-लगाई छोड़ना चाहता है ! इस नौकरी के कारण ही तेरी और तेरे कुटुम्ब की इज़्ज़त है। दुनिया कहती है—लायक़ बेटा है, कुटुम्ब को सँभाल रखा है, नहीं... तो...नहीं तो...

अम्मा की पुरानी बातें याद आ जाती हैं ! आँखों से टप-टप आँसू टपकने लगते हैं। निशिकान्त न मुस्कराता है न रोता है, केवल शून्य में खोया-खोया देखने लगता है। भावुकता उसमें भी है। माँ की बात चुभती है। पर वह जानता है जो कुछ उसके हृदय में है वह न माँ समझती है और न पत्नी। उसका हृदय देश की परतन्त्रता पर कलकता है। वह सोचता है—मेरा देश, करोड़ों नर-नारियों का देश, पराजित क्यों है ? क्या हम लोग विदेशी पदाक्रान्त करनेवालों का साथ छोड़ दें तो उनकी मशीन ठप्प न हो जावेगी ? क्या वे सदा शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं ? और क्या दो-चार हज़ार के मर जाने से देश मर सकता है ? क्या जन-शक्ति से बढ़कर कोई शक्ति है ?...प्रश्न तीखे हैं। उसके अपने हृदय को छेद देते हैं ! वह बहुत सोचता है। आख़िर क्यों...? उत्तर मिलता है—क्योंकि जनता ने अभी अपने-आपको समझा

नहीं। वह आज़ादी और ग़ुलामी का भेद नहीं जानती। जिस दिन जान जायगी उस दिन देखेगी, हमने अपने हाथों में आप ही हथकड़ी डाल रखी है और हम स्वयं ही उन्हें उतार कर फेंक सकते हैं। यही बात उसने एक दिन बड़े मनोयोग से रजनी को समझाई।—रजनी! जिस दिन तुम समझोगी तुम गुलाम हो, उसी दिन तुम्हें मेरे मन के द्वन्द्व का पता लग जावेगा। उस दिन तुम स्वयं बन्धन खोलने को आतुर हो उठोगी। बात केवल समझने की है। देश गुलाम है लेकिन हम आपस में लड़ते हैं पद के लिये, लिप्सा के लिये। सोचते नहीं, आज़ादी के सामने सब गौण है।

रज़नी बोली—आप ठीक कहते हैं, ,परन्तु आज़ादी के लिये जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनसे जनता डरती है। भूख की कल्पना उसे कँपा देती है।

निशिकान्त हँसा—भूख! रजनी,संसार में भोजन की कमी न कभी थी, न कभी होगी। बात केवल इतनी है वह कुछ थोड़े से हाथों में चला गया है। उसे छीन लेना हमारा काम है।

लेकिन कैसे?

उसके लिये जो समझदार हैं उन्हें रास्ता दिखाना पड़ेगा।

और यही सोचकर निशिकान्त सहसा हर्ष से भर उठा। ठीक तो है, मैं इतना समझता हूं, मुझे रास्ता दिखाना चाहिए। मेरा और उस्मान का झगड़ा है। मैं आगे बढ़ गया तो क्या होगा? वेतन बढ़ जावेगा, परन्तु साथ ही गुलामी की जंजीरें भी दृढ़ होंगी। मैं गुलामी से घृणा करता हूं। मुझे कह देना चाहिये मैं उस्मान को सीनियर स्वीकार करता हूं·····परन्तु मैं कौन?···रास्ते में सरकार है, मेरे साथी हैं···। साथी कहेंगे—कायर! कृतघ्न! हिन्दू जाति के माथे पर कलंक का टीका लगाना चाहता है। शेर जाल में फँसा है, उसे मुक्त करना चाहता है। शेर शेर है। मुक्त होने पर तुम्हें न भी खाये, पर हम तो हैं···। तो···? उसका मस्तिष्क चकराने लगा। उसे कोई रास्ता नहीं

सूझ रहा था। उसका कोई मित्र नहीं था। जो थे वे हिन्दू थे, सम्बन्धी थे, या विरोधी थे। सभी जाति-द्वेष, वर्ग-द्वेष और मानवता के प्रति घृणा से भरे हुए थे। वे सब कायर और कमीने थे·····

धीरे-धीरे निशिकान्त पर भी यही कायरता छाने लगी। मैं क्यों पैदा हुआ, मेरा क्या मूल्य है? मैं क्या कर सकता हूं? मेरे पास न शक्ति है, न सम्पन्नता, न सौन्दर्य, न पारिवारिक महानता। मुझमें प्रतिभा भी नहीं है जो महान लेखक बन सकूँ। तो मैं किस योग्य हूं?···

किसी ने पुकारा—बाबू निशिकन्त।

चौंककर देखा, पोस्टमैन था—बाबू निशिकान्त, आपकी चिट्ठी है।

लाइये।

दो अख़बार और एक लिफ़ाफ़ा।

लिफ़ाफ़ा रजनी का था। वही चिर-परिचित अक्षर! खोलकर पढ़ने लगा। सदा की भाँति उसने लिखा था—

प्रियतम प्राणेश्वर!

आपका प्रेम-पत्र आया। पढ़कर न जाने क्यों मन भर आया। आप इतने दुःखी क्यों रहते हैं! आप जैसे योग्य आदमी तड़पते रहे तो कैसे होगा? बुद्धि आपको मिली है, आप लेखनी के स्वामी हैं। क्या कोई गुण-ग्राहक नहीं है? और फिर न हो। आत्म-विश्वास बहुत बड़ी चीज़ है·····नौकरी में मन नहीं लगता तो सच कहती हूं छोड़ दीजिए। आप भूखे नहीं रह सकते, फिर मैं हूं। पेट भरने जितना मैं भी कमा सकती हूं। और सबसे अच्छा यह है हम दोनों अपना एक स्कूल चलायें। अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ विद्यार्थियों को आत्मज्ञान भी आप दे सकेंगे। क्यों ठीक रहेगा न?

पर कुछ भी हो दुखी न रहिये। उससे क्या समस्या हल होगी? मुनिया प्रसन्न है। सदा बागीचे में फूल तोड़ती रहती है। आपको नमस्ते लिखाती है।·····

आपकी ही—रजनी

निशिकान्त ने पत्र पढ़ लिया। मानो पूर्व में प्रकाश की किरणें फूट पड़ी हों। क्षण भर में मस्तिष्क की अशान्ति दूर हो गई। शब्द सीधे थे, पर उनके पीछे एक मार्ग था, मानो कृष्ण ने अर्जुन को चेतावनी दी थी—भविष्य उन्हीं का है जो निःशंक है; मानो रजनी ने निशिकान्त को बताया था—दुविधा मौत है। भविष्य का निर्माण हमारे हाथ में है। भविष्य हमारा निर्माण नहीं करता।

हाँ, निशिकान्त ने कहा—ठीक है मैं भविष्य का निर्माता हूं। भाग्य मेरे हाथ में है। मैं अब इस चक्की में नहीं पिसूंगा। मैं त्याग-पत्र दूंगा ···त्याग-पत्र···! हाँ, मैं त्याग-पत्र दूँगा। मुझे मुक्ति मिलेगी। मैं खुलकर उन कारणों से लड़ सकूंगा जिसके कारण ये प्राण-घातक परिस्थितियां पैदा हो गयी हैं। मैं जड़ पर प्रहार करूँगा और जड़ है गुलामी, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक या सांस्कृतिक। गुलामी गुलामी है। मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा।

और सचमुच अगले दिन सबेरे जाते ही उसने त्याग-पत्र दे दिया। दफ्तर में जैसे विस्फोट हुआ हो। स्तीफ़ा! सरकारी नौकरी से स्तीफ़ा! पन्द्रह वर्ष की नौकरी से स्तीफ़ा!

टाइपिस्ट ने नेत्र विस्फारित कर कहा—बाबू निशिकान्त ने स्तीफा दे दिया!

एकाउन्टैंट चौंका—स्तीफ़ा!

सीनियर बाबू ने पहले तो अचरज से देखा, फिर गम्भीरता से कहा—तुमने ग़लत सुना है। कोई और बात होगी।

नहीं, नहीं—टाइपिस्ट ने कहा—मैंने स्वयं देखा है, बड़े बाबू उन्हें समझा रहे थे।

तब क्या कहा उसने?

यही मैंने स्तीफ़ा दे दिया है, मैं उसे वापिस नहीं लूंगा।

नहीं लूंगा?—एकाउन्टैंट ने व्यंग से कहा—रात बड़े बाबू से लड़ा था, वही जोश है। साहब के सामने जाते ही दूर हो जायगा।

जी हाँ, आप ठीक कहते हैं। माना बड़े बाबू बत्तमीज़ हैं, पर इसका क्या यह मतलब है कि नौकरी छोड़ दी जावे ? यह तो बुज़दिली है।

एकदम बुज़दिली।

अजी साहब ! मैंने भी स्तीफ़ा दिया था। स्टन्ट है, केवल स्टन्ट। देख लेना शाम तक वापिस ले लेंगे।

तभी आ गये बाबू हरिचन्द। अचरज से सब को देखा, बोले—क्या बात है ?

आपने नहीं सुना ?

नहीं।

आपके साथी बाबू निशिकान्त ने स्तीफा देदिया।

स्तीफ़ा दे दिया ?

जी, दे दिया।

तो स्तीफ़ा दे दिया उसने.....?

.....

मैं जानता था वह स्तीफ़ा देगा। सच तो यह है, उसे स्तीफ़ा देना ही चाहिए था।

क्यों ?—कई बाबू एक साथ अचरज से बोले।

क्योंकि वह शेर है।

फिर सहसा रुक, धीरे-धीरे छड़ी को घुमा कर बोले—एक दिन मैं भी शेर बनने चला था, परन्तु मेरा भाग्य ! भेड़ बन कर रह गया। हम सभी भेड़ हैं। हम जानते हैं, हम गुलाम हैं परन्तु रोज कुत्तों की तरह लड़ते हैं और मालिक के अत्याचार को न्यायोचित ठहराते हैं। हम अपने घर में बिराने हैं। हम अपनी भाषा नहीं बोल सकते, हम अपने वस्त्र नहीं पहन सकते, हम अपनी बात नहीं कह सकते। कहें कैसे ? ऊंट ने सारा तम्बू घेर लिया है। उससे लड़ेंगे तो तम्बू फट जावेगा।

भावुकता हँसी में पलट गई : कहते रहे, —तम्बू फट जावेगा ?

भले ही हमारा देश हम से छिन जावे, परन्तु हम, हमारी बीवियां, हमारे बच्चे जीते रहें ! ठीक है, भेड़ की दृष्टि आंखों से आगे नहीं बढ़ती। जिसकी बढ़ जाती है वह शेर है। इसीलिए निशिकान्त शेर है।

वे बोल रहे थे और दूसरे क्लर्क सहमे, सकपकाये, उन्हें देखते रहे। एक सोच रहा था—यह भी मूर्ख है ! दूसरा समझता था—कहता तो ठीक है। तीसरे के मन में दृढ़ विश्वास था—नहीं, यह बुज़दिली है, अपनी जाति से विश्वासघात है। चौथा प्रसन्न था—चलो, एक सीनियर आदमी गया। मेरी तरक्क़ी का रास्ता खुला।

बाबू हरिचन्द शीघ्रता से निशिकान्त के पास पहुंचे और बोले—तो तुमने व्यूह तोड़ डाला। शाबाश, तुमने दिखा दिया भेड़ें भी शेर बन सकती हैं। मुझे बड़ी खुशी है। तुम अकेले हो पर रास्ता दिखाने वाला सदा एक होता है और फिर हम लोगों के शरीर भले ही तुम्हारे साथ न हों, मन से हम सब तुम्हारी कामयाबी के लिए दुआ करेंगे।

निशिकान्त इस प्रशंसा के लिए तैयार नहीं था। वह सहसा विचलित हो उठा। न सोच सका, न बोल सका, अपलक सजल नेत्रों से बाबू हरिचन्द को इस प्रकार देखने लगा मानो उनके मुख पर उसके भविष्य में होने वाला अरुणोदय स्पष्ट झलक उठा हो।

: १७ :

क्रान्तिकारी

रामनाथ ने आज निश्चय कर लिया था, वह अब नहीं रुकेगा। वह अवश्य चला जायेगा। लेकिन रजनी... ? नाम याद आते ही उसका निश्चय डगमगाने लगा। वह क्रुद्ध हो उठा—यह कैसी मोह-जड़ता है ? जो जीवन भर मौत से जूझता रहा है, जो अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध जीवन की थाह लेना चाहता है, वह एक नारी के कारण अपनत्व को खोता जा रहा है। छिः, यह तो निरी कायरता है ! मानता हूं, रजनी का कोई स्वार्थ नहीं है। वह सहज सहानुभूति के कारण मेरे प्रति करुण है। परन्तु करुणा और सहानुभूति क्या जीवन के गुण हैं ? ये तो जीवन के भार हैं.....

उसी समय दरवाज़े पर खड़-खड़ाहट हुई। उसने सहज स्वर में कहा—कौन ?

मैं... ।

रजनी... ?

वह चौंक कर उठा, देखा—बढ़ई की असावधानी के कारण किवाड़ों में जो छिद्र रह गये हैं उन्हीं में से होकर धवल प्रकाश की किरणें जाने कब की चुपचाप अन्दर आ गई हैं। बाहर शान्ति को भंग करता हुआ धीमा कोलाहल फूट पड़ा है। नीचे सैर के शौकीन बाबुओं की पदचाप बार-बार पास आकर दूर चली जाती है। उसने किवाड़ खोल दिये। बदन में हलकी-सी सिहरन दौड़ गई। रजनी ने आकर चाय का गिलास

और नाश्ते की प्लेट मेज पर रख दी और लौट चली। रामनाथ ने एक बार प्लेट को देखा, फिर रजनी को। बोला—बेटी सुनो...।

जी।

मैं आज जाऊँगा।

जी, और...।

मैं अब नहीं रुक सकता।

आप रोज ही ऐसा कहते हैं।

रामनाथ सहसा कुण्ठित हो उठे, बोले—परन्तु आज रोज की बात नहीं है। आज मैं जाना चाहता हूं।

रजनी मुड़ी—जाना चाहेंगे तो मैं रोकूंगी नहीं। कौन किसको रोक सका है? फिर भी...।

फिर भी क्या...?

यही कि यहाँ आपको क्या कष्ट है जिसको सहन करने में असमर्थ आप भाग जाने को आतुर हैं?

अन्यमनस्क रामनाथ फिर झिझके, लेकिन दूसरे ही क्षण एक विचार उनके मस्तिष्क में उभड़ आया। वे बोले—जिन्हें तुम कष्ट कहती हो उन्हीं के बीच पल कर मैं इतना बड़ा हो गया हूं। उन्हीं का अभाव मुझे यहाँ खटकता है। लगता है, जो कुछ यहाँ है वह एक षड्यंत्र है, इतना गहरा जितना मकड़ी का जाला, परन्तु मैं मक्खी नहीं बनना चाहता।

रजनी ने सुन लिया। सोचने लगी, इनकी बात पर हँसूं या गुस्सा करूं? दुनिया दुख से दूर भागती है, यह दुखों की गोद में जाने के लिए आतुर हैं। कैसा आदमी है यह...!

और वह बिना कहे नीचे लौट गई।

रामनाथ कुर्सी पर बैठ कर यंत्र-चालित की भाँति चाय पीने लगे। पीते-पीते सोचने भी लगे। मनुष्य बहुधा जानबूझ कर नहीं सोचता। विचार आप-ही-आप आकाश के बादलों की भाँति मस्तिष्क में उमड़

आते हैं। बादल सभी सजल होते हैं। जल के बिना बादल-बादल नहीं होता। फिर भी एक धरती की छाती ठंडी करता है; दूसरा व्यर्थ ही सूरज की धूप और चाँद की चाँदनी को रोकता रहता है। इसी प्रकार विचार हैं। कुछ के कारण मनुष्य स्वयं आगे बढ़ता है और संसार भी। पर कुछ अड़ियल घोड़े की तरह गाड़ी को पीछे धकेलते रहते हैं। रामनाथ के मन में जो विचार अब उठ रहे थे वे अड़ियल घोड़े के समान थे। वह कभी का निश्चय कर चुके थे उन्हें जाना है। परन्तु कब, यह वह नहीं जान पाते थे। जाने का प्रति क्षण आने पर देखते—किसी ने सामने आकर रास्ता रोक लिया है। रोकने वाले में शक्ति है,यह बात नहीं है। और शक्ति हो भी तो क्या वह ब्रिटिश सरकार से अधिक हो सकती है? पूरे तीस वर्ष से वह इस शक्तिशाली सरकार से लोहा ले रहे हैं। जीवन का कोई भी मोह, कोई भी कष्ट उन्हें त्रस्त नहीं कर सका। वह सदा नदी के प्रवाह के समान आगे बढ़े हैं। जिसने प्रवाह को रोका वह खुद ही तहस-नहस हो गया...।

लेकिन तभी न जाने किसने आकर उनके कान में फुसफुसाया—तुम जाना नहीं चाहते, नहीं तो जाने वाले को किसने रोका है?

वह चिल्ला उठे—यह गलत है। मैं जाना चाहता हूं.....।

ठीक उसी समय निशिकान्त बाहर से लौट आए देख कर बोले—दादा, चाय नहीं पी अबतक?

रामनाथ चौंके—पी रहा हूं, निशिकान्त।

पी रहे हो खूब, दादा। अभी से आँखें धोखा देंगी, ऐसी कल्पना भी मैं नहीं कर सकता। देखता हूं, प्लेट में काजू और बादाम उसी तरह पड़े हैं। चाय ठण्डी होकर काली पड़ गई है।

अचरज! रामनाथ का चेहरा कुछ खिंच चला। बोले—जो कुछ तुम देख रहे हो वह ठीक है। मुझे मेवा खाने की आदत नहीं है।

तब.....?

मैं यहाँ से जाना चाहता हूं।

निशिकान्त मुस्कराया—कहाँ जायेंगे आप ?

इतना बड़ा संसार क्या नष्ट हो गया है ? इसी में पलकर इतना बड़ा हुआ हूं।

संसार में सभी पलते हैं दादा, परन्तु सभी को तो पुलिस आवारा-गर्दी में गिरफ्तार नहीं करती।

अपने विरोधियों को सभी लांछित करना चाहते हैं; फिर यदि सरकार मेरे विद्रोह को गुण्डागिरी बताती है तो अचरज क्या है। परन्तु उनके कहने से क्या मैं आवारा हो सकता हूं ?

नहीं हो सकते।

तो फिर..... ?

फिर यही दादा, इन वर्षों में दुनिया ने कितनी प्रगति कर ली है, यह आप भूल जाते हैं।

विद्रूप से रामनाथ मुस्कराए—प्रगति ? जिसने लोहार के घन बजाए हैं, वह सुनार की खट-खट को प्रगति कैसे मान सकता है ? मुझे राजनीतिक पार्टीबाजियों में विश्वास नहीं है। राजनीति का आरम्भ आजादी के बाद होता है। गुलामों की एक ही पार्टी है 'विद्रोही'। एक ही धर्म है 'बगावत'। मैं क्रान्ति चाहता हूं, और क्रान्ति रक्त माँगती है, सिद्धान्त नहीं...।—कहते-कहते रामनाथ तीव्र होने लगे। उनकी आँखें आरक्त हो गईं। नसों में रक्त का संचार हो आया। उन्होंने तीव्रता से कहा—निशिकान्त, मैं आज अवश्य जाऊंगा।

निशिकान्त ने धीरे से कहा—आज ही जाइएगा।

हाँ, आज ही।

कहाँ का टिकट लाऊं ?

टिकट ? मैं टिकट नहीं ले सकता। मेरे पास पैसा नहीं है। मैं पैदल जाऊंगा।

निशिकान्त ने गम्भीर होकर कहा—दादा। आप तूफ़ान की तरह सोचते हैं, परन्तु तूफ़ान नाश का प्रतीक है, निर्माण का नहीं।

ठीक है। मैं नाश चाहता हूं। निर्माण नाश के बाद होता है, पहले नहीं।

निशिकान्त ने फिर कुछ नहीं कहा। कहे भी क्या ? जहाँ विचारों में विषमता है वहाँ तर्क है, और तर्क का कोई अन्त नहीं होता। और फिर न जाने क्यों इस व्यक्ति से तर्क करते उन्हें दुख होता है।

रजनी की हालत और भी विचित्र है और उसका कारण है।

सात दिन पहले की बात है।

रात गहरी होती आ रही थी और रजनी निशिकान्त की बाट देखती रसोईघर में बैठी थी। तभी पैरों की चाप उसने सुनी। सोचा, वह लौट आए हैं। पर यह क्या ? वह अकेले नहीं जान पड़ते। सोचने लगी, इतनी रात को कौन आया ? तभी निशकान्त ने आकर कहा—रजनी ! खाना रखा है क्या ?

नहीं तो, क्यों ?

मेरे साथ एक आदमी है।

बना दूं... ?

हाँ, हाँ, बना दो ! बेचारे भूखे हैं।

अभी बनाती हूं, जी।

और खाना खिलाते समय उस आदमी को देख कर रजनी चौंक उठी—ऐसे खाता है जैसे कभी इन्सानों में नहीं रहा। कपड़े फटे हुए हैं। आँखों से वहशीपन टपकता है। बोलता है तो मानो लड़ता हो।

कौन है यह ?—रजनी ने एकान्त पाकर निशिकान्त ने पूछा।

एक क्रान्तिकारी।

कांग्रेसी ?

नहीं, रजनी ! कांग्रेसी नहीं है। बहुत पुराना विद्रोही है। तीस वर्ष से लगभग जेल में ही रह रहा है।

रजनी काँप उठी—तीस वर्ष, जेल में !

हां रजनी ! सरकार छोड़ना नहीं चाहती। एक बार भाग कर विदेश

घूम आया है। फिर पकड़ा गया। कांग्रेस-राज्य के समय छूट गया था, परन्तु उसके समाप्त होते ही फिर जेल में बुला लिया गया।

रजनी करुणा से भर उठी—बेचारे के घरवाले क्या कहते होंगे।

निशिकान्त मुस्कराया—यही अच्छा है, उसके घरवाले नहीं हैं।

नहीं हैं—क्या कहते हो? आखिर मां, बाप, स्त्री……?

ना रजनी, कोई भी नहीं है। पहली बार जब उसने बगावत की तो केवल बीस वर्ष का था। पिता एक सरकारी दफ्तर में हेडक्लर्क थे। सुना तो बेटे को त्याग दिया। आजकल के से दिन नहीं थे। बगावत का नाम मौत था। हां, मां बहुत रोई-चिल्लाई। समझाया। एक बार पकड़ कर घर भी ले गई। पर यह मौका पाकर फिर निकल भागे। सुना, उसके बाद मां-बाप से कहा-सुनी हो गई। मां ने अनशन करके प्राण त्याग दिये।

हाय…!

और मां के प्राण-त्याग की बात सुनकर ये अत्यन्त प्रसन्न हुए; इन्हें मुक्ति मिली।

रजनी नारी थी। छाती में दरार पैदा हो गई। उसी से होकर करुणा और सहानुभूति का अजस्र प्रवाह बहने लगा। रात को सोने के लिए उसने नया बिछौना, नई चादर, नया तकिया निकाला। ऐसे बिछाने लगी जैसे अपने प्यारे बच्चे को सुलाना चाहती हो। अभी उसकी गोद भरी नहीं थी, पर अनजाने में अज्ञात शिशु उसकी छाती को घेरे पड़ा था। उसी में आकर अनायास ही इस बूढ़े बालक ने अपना घर बनाना शुरू कर दिया तो उसे तनिक भी दुख नहीं हुआ। उलटे वह एक अज्ञात गौरव से भर उठी। उसने अपने पति से कहा—देश के लिए इन्होंने सब-कुछ त्याग दिया। ऐसे ही तपस्वियों के बल पर भारत आजाद होगा।

निशिकान्त बोले—सो तो है ही।

पर ये अब जायंगे कहां?

कुछ पता नहीं।

आपको कैसे मिले ?

शायद कहीं मेरा नाम सुना होगा। पूछते-पूछते चले आये।

और कोई नहीं जानते इन्हें ?

निशिकान्त फिर मुस्कराये—दुनिया सदा ऊंचा सुनती है; रजनी ! जो शोर नहीं मचा सकते, उनकी बात वह नहीं सुन पाती। और तुम जानती हो, शोर मचाना भी एक कला है, जो इनको नहीं आती।

ठीक है जी। जो चुपचाप काम करते हैं उन्हें कोई नहीं पूछता।

पर रजनी, इनके साथ एक बात और है। सदा जेल में रहे हैं। जनता से कभी वास्ता नहीं पड़ा। इस बीच संसार कहीं-से-कहीं पहुंच गया। इनके विचार, साधन सभी पुराने हो गये हैं। दुनिया उन्हें भूल गई है। इसलिए भी इनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता...।

रजनी को नींद आ रही थी। सुनते-सुनते वह सो गई। परन्तु अचानक ही जिस व्यक्ति ने उसके वात्सल्य को जगा दिया था वह स्वप्न में भी उसका पीछा न छोड़ सका। देर तक उसीको लेकर उसका मन खिलवाड़ करता रहा। इसी बीचमें अचानक उसकी आंख खुलगई देखा, चारों ओर अंधकार है—सन्नाटा है। केवल निशिकान्त कभी-कभी कुनमुन-कुनमुन कर उठता है। कभी-कभी दूर कुत्ते भूंक उठते हैं, परंतु यह कैसा शब्द है ? कोई धीरे-धीरे रह-रह कर सुबक उठता है। वह भय से कांपने लगी—कौन रोता है ऐसे...पर शब्द दूर नहीं था। शान्त होकर सुना, बराबर के कमरे में...बराबर के कमरे में तो वे सोये हैं। तो क्या...? वह उठी, शीघ्रता से निशिकान्त को झकझोरा—सुनिये, सुनिये जी।

निशिकान्त नींद में गुर्राये—क्या है ?

अजी, सुनिये तो...।

चौंक कर उठा। अँधेरे में आंखें फाड़कर बोला—कौन ?

मैं...।

रजनी ? क्यों ?

अजी वह रो रहे हैं।

रो रहे हैं ? कौन ?

वह...।

रामनाथ बाबू ?

जी।

निशिकान्त की नींद दूर हो गई। लालटेन जलाकर उसने पूछा—क्या बात है ?

रजनी बोली—कुछ पता नहीं। शायद बीमार हों।

तो, देखूं जाकर ?

हां, देखना तो चाहिए ?

निशिकान्त उठा, किवाड़ खोले। रोने का स्वर अब भी आ रहा था। क्षण-क्षण में कोई सुबक उठता था। अचरज से भरकर निशिकान्त कुछ देर उसी तरह खड़ा रहा, फिर उसने साहस करके किवाड़ थपथपाये.....।

अन्दर एकदम शान्ति छा गई।

रामनाथ बाबू...?

कोई नहीं बोला।

रामनाथ बाबू...?

अब वह बोले—जी ! स्वर संयत था। किवाड़ खोलकर पूछा—क्या बात है ?

निशिकान्त झिझका। फिर बोला—सोते-सोते वह चौंक पड़ी। ऐसा मालूम हुआ, कोई रोता है।

रोता है ? कौन ?

यही तो देखना है।

अंधेरे में क्या भाव चेहरे पर आये, कुछ पता नहीं लगा। लेकिन कहा उन्होंने यही—शायद कोई पास के मकान में रो रहा हो !

शायद, पर उसे ऐसा भ्रम हुआ जैसे आप...।

वह जोर से हँस पड़े—मैं ? मैं क्यों रोऊंगा निशिकान्त बाबू ? मैं तो गहरी नींद में सो रहा था। आपकी पत्नी को भ्रम हुआ है।

शायद,—वह हतबुद्धि से लौटने लगे,—क्षमा करिये, आपको व्यर्थ जगाया।

वह उसी तरह बोले—कोई बात नहीं है। केवल गलतफहमी के कारण ही ऐसा हुआ है।

और बात वहीं समाप्त हो गई। निशिकान्त ने सोचा—अपने को छिपाने की कला में आदमी कितना अभ्यस्त हो गया है।

रजनी ने सोचा—ये लोग भी कितना झूठ बोलते हैं। छल और झूठ। हाय रे भाग्य ! आदमी इनसे कहीं भी नहीं बच सका। स्वर्ग में उनका अभाव नहीं है। 'मेरी पीड़ा प्रकट न हो'—यह यत्न करने में छल और झूठ अनायास ही पुण्यात्मा के अस्त्र बन जाते हैं। कैसी घोर विडम्बना है, पर रजनी अब भी सोचती है—यह रोये क्यों ?

परन्तु इससे भी बढ़ कर अचरज रजनी को उस दिन हुआ। जब रामनाथ बाबू ने स्वयं स्वीकार किया वह रोये थे। तबतक उनका अजनबीपन दूर हो चुका था और इस दम्पति के अपनत्व के सामने वह झुकते जा रहे थे। वह तब धूप में बैठे रजनी को अपने बीते जीवन के संस्मरण सुनाने में लगे थे। अवस्था की दृष्टि से रजनी को बेटी कहते थे। मां की बात सुनाते-सुनाते अचानक बीच में बोल उठे—उस रात बेटी, मैं सचमुच रोया था।

रजनी बोली—मैं जानती हूं।

सोचा होगा, कैसे पागल है ?

पागल नहीं, झूठा।

रामनाथ खुल कर हँसे—सचमुच मैंने झूठ बोला था।

क्यों ?

क्योंकि मैं अपनी कायरता स्वीकार नहीं करना चाहता था।

कायरता·····?

हाँ, रोनेवाले कायर होते हैं।

पर आप रोये क्यों थे ?

माँ की याद आ गई थी, बेटी। बचपन में वह इसी तरह मेरे लिये साफ बिस्तर बिछाया करती थी। चादर पर एक भी दाग लग जाता था तो मैं उसे फेंक देता था। याद नहीं पड़ता कभी तकिये का एक गिलाफ दूसरी रात मेरे तकिये पर रहा हो। तीस वर्ष पहले के वे दिन उस रात मेरे सामने आ खड़े हुए। ऐसा लगा मानो मां ने बिस्तर बिछा कर पुकारा हो—रामू! सोयेगा नहीं रे? सबेरे कालेज जाना होगा·····। उस जमाने की बात। कालेज जाना श्रीवृद्धि और ऐश्वर्य का मुक्त द्वार था। यही आशा लगा कर मेरे मां-बाप ने मुझे कालेज भेजा था। इसी आशा पर उनका प्यार-दुलार मुक्त होकर बह रहा था। पर हाय रे भाग्य! एक दिन चुपके से आकर बेमाता ने मेरे मां-बाप का स्वप्न भंग कर दिया। उनका बेटा इण्डियन-सिविल-सरविस में न जाकर भारत-मां की सेवा में जा पहुँचा। शब्द के अर्थ में कोई भेद नहीं था। भेद था केवल अर्थ की प्राप्ति में। इस प्राप्ति के प्रश्न को लेकर मेरे जीवन की दिशा पलट गई। पिता ने देखा, क्रुद्ध हो उठे। बोले—तूने मेरी नाक काटी है, मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहता।

मैंने कहा—पिताजी, आपकी नाक जहां है वहीं रहेगी, पर अपना मुंह दिखाने मैं आपके घर नहीं आऊंगा।

मां कांप उठी—क्या कहता है तू? पिता की प्रतिष्ठा धूल में मिलाना ही क्या आजकल की सन्तान का पेशा है?

मैंने कहा—मां! पिता की प्रतिष्ठा धूल में मिलाकर भी मैं देश की प्रतिष्ठा बचा सका तो सौदा सस्ता ही होगा।

मां नहीं समझी, रो पड़ी। न जाने हिन्दुस्तानी मां के ये आँसू कब रुकेंगे? जिस दिन रुकेंगे उसी दिन भारत आजाद होगा, उससे पहले नहीं। उस रात मैंने वे आँसू फिर देखे। लक्ष्मण की रेखा के

समान इन्हीं आंसुओं की लाग देकर मां मुझे बाँधना चाहती थी, पर बाँध न सकी। रावण का नाश जो होना था! पर बेटी, उस दिन और आज के दिन में एक अन्तर है। तब मेरी धमनियों का रक्त जितना गरम था आज उतना नहीं है। उत्साह होकर भी उसका आधार-स्तम्भ ढीला पड़ गया है। न जाने क्यों अपने को निर्बल महसूस करता हूँ? जेल लाँघ कर मैंने देश छाना है। वर्षों अधिकारियों के लिए भूत बन कर उनकी नींद हराम की है। पर आज···?

सहसा रामनाथ उद्विग्न हो उठे। आँखें आरक्त हो आईं। मुख तमतमा गया—नहीं। मैं अब भी सशक्त हूँ। मेरा ध्येय मुझे भूला नहीं है। मैं मोह-जाल में फँस कर कायर नहीं बन सकता···।

रजनी चौंकी, कुछ दुःखी भी हुई। बोली—आपको दुःख हुआ, क्षमा कर दीजिए। आप देश के गौरव हैं, भले ही आपका नाम कोई न जानता हो। आपको रोक रखने की हम लोगों की कतई इच्छा नहीं है।

रामनाथ को अपनी गलती महसूस हुई, लज्जित हो उठे। कहा—नहीं बेटी! गलती मेरी है। सड़क का भिखारी ऐश्वर्य की गोद में रोने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। आशा से अधिक जिसे मिल जाता है वह मस्तिष्क का संतुलन खो बैठता है। जो स्नेह स्वप्न बन गया था वही जब साकार होकर सामने आ गया तो मैं कायर बन चला। पर बेटी, मैं अब जाना चाहता हूँ।

रजनी बोली—विश्वास रखिये, हम आपको बांधना नहीं चाहते। परन्तु इस प्रकार भी क्या जीवन बिताया जा सकता है? अराजकता के दिन अब नहीं हैं। कुछ दिन हम लोगों के पास रहिए। देश आपका है। आप किसी पर भार बनने की बात क्यों सोचते है?

रामनाथ द्रवित होने लगे, कहा—रजनी बेटी। तुम्हें देखकर मां की याद आ जाती है। ऐसा लगता है, तुम्हारे रूप में मां जन्म लेकर फिर से मेरी देख-भाल करने आ गई है। ऐसा नहीं होता तो कैसे उस

रात में निशिकांत को ढूँढ पाता ? उनके लेख पढ़े थे। लगा, आदमी विस्तृत है, इसलिए चला आया। देखता हूँ, उस विस्तृत आकाश के अतिरिक्त यहां विशाल धरती भी है। इसी आकाश और धरती की मिलन-छाया के नीचे जीवन-सन्ध्या के कुछ दिन बिता सकने का लोभ मुझे बार-बार हो आता है।

रजनी मुस्कराई—तो उस लोभ को त्यागिये नहीं। कुछ दिन यहाँ जरूर रहिए।

रामनाथ फिर असमंजस में पड़ गये। कुछ क्षण सोचते रहे, फिर बोले—देखता हूँ, यह लोभ त्यागा नहीं जा सकेगा। मैं भाग नहीं सकूँगा···।

रजनी गद्‌गद् हो उठी, जैसे मनचाहा वर मिला। निशिकान्त के लौटते ही उसने कहा—

सुनिये, ये अब यहीं रहेंगे।

सच ?

हाँ। आज उन्होंने पहिली बार स्वीकार किया है वह रहना चाहते हैं।

निशिकान्त प्रसन्न हुआ, बोला—यह शुभ है रजनी ! कुछ दिन यहाँ टिक कर रहेंगे तो जीवन पर विचार करने का अवसर मिलेगा।

जी। पर आप उनके लिए कपड़ों का प्रबन्ध कर दीजिये। इनके पास कुछ नहीं है। और भी जरूरी चीजें···।

जरूर करूंगा। आते समय भंडार से कपड़ा लेता आऊंगा।

और देखिये, यह पढ़े-लिखे आदमी हैं, चाहें तो ट्यूशन कर सकते हैं। स्वाभिमानी आदमी दूसरे का अन्न खाना ठीक नहीं समझते। इनको ऐसा महसूस नहीं होने देना चाहिये कि यह हम लोगों पर निर्भर हैं।

निशिकान्त प्रभावित होकर बोले—रजनी, बात तुमने पते की कही है। मैं अवश्य इसका भी प्रबन्ध करूंगा।

और सचमुच अगले दिन निशिकान्त जब दफ्तर से लौटे तो बहुत-सा कपड़ा और कुछ अन्य जरूरी सामान बगल में दाबे हुए थे। आकर बोले—लो भाई, दादा का सामान ले आया हूँ। कहाँ हैं वह? दरजी भी आ गया है।

रजनी देखकर हँसी—ले आये, बड़ा अच्छा किया। दादा ऊपर बैठे होंगे। आज तमाम दिन बड़े प्रसन्न रहे। कहते थे····।

निशिकान्त ऊपर चले गये। रजनी सामान संभालने लगी। लेकिन उसी क्षण ऊपर से निशिकान्त ने पुकारा—अरे भाई वह यहाँ नहीं हैं।

रजनी चौंकी—नहीं हैं? वहीं तो थे।

बाजार तो नहीं गये?

मुझसे तो नहीं कहा। मैं जब आई थी तो पढ़ रहे थे। और कहती-कहती वह भी ऊपर चली गई। देखा—कमरा सूना पड़ा है। किताब उलटी रखी है। सब सामान यथास्थान है, केवल उनके पहनने की धोती अरगनी पर नहीं है।

मन कैसा चोर है? क्षण भर में सब-कुछ देख डाला। बोली—कहां गये? बिना कहे तो वह हिलते भी नहीं।

तुमने सुना न हो!

शायद! तो अभी आ जायेंगे, आप दरजी से कह दीजिये कि···।

तभी उसकी दृष्टि पलंग पर पड़ी। तकिये के नीचे एक कागज रखा था। झपट कर उसे उठा लिया। रामनाथ ने उसमें लिखा था—

तुम लोगों ने मुझ पर जो अपने निष्पाप हृदय का स्नेह ऊँडेला है, उसका बदला सहस्र जन्म लेने पर भी चुकाना असम्भव है। सोचा था जीवन के अन्तिम दिन तुम लोगों के स्नेह-वट की छाया में बिता दूं, पर मनुष्य का सोचना क्या स्वतन्त्र है? वन्दिनी मां की मुक्ति के लिए जन्मदात्री का वध मैं कर चुका हूँ। सोचता हूँ, किसी दिन तुम लोगों के प्रति भी मुझे कृतघ्न न बनना पड़े। इसीलिए आज जा रहा

हूँ। विश्वास रखिये, मै जीवन मैं विश्वास रखता हूँ। मरते दम तक जीऊंगा। हां, एक बात तुमसे कहता हूँ। प्रेम का जो स्फटिक सोता तुम लोगों के हृदय में बहता है उसे कभी न सूखने देना। सारा संसार उसी का प्यासा है। मैं भाग्यशाली था जो उस सोते का पानी पी सका। अकेला ही सारा पी जाऊं—इतना स्वार्थी मैं नहीं होना चाहता।

तुम लोगों का,

रामनाथ

पढ़ लिया तो कागज हाथ से छूट कर गिर पड़ा—बस।

: १८ :

नया राजा

आज अम्मा का जी अच्छा नहीं था इसीलिए कहानी कहने का भार पड़ा पिताजी पर। असित बोला—पिताजी, राजा की कहानी कहो।

अमला ने कहा—नहीं, परियों की कहानी।

छोटी अमिता हँसी—नहीं, राजा की।

पिता बोले—अच्छा! आज राजा की कहानी कहेंगे, नये राजा की।

सबने एक स्वर से कहा—हां, हां, पिताजी! नये राजा की कहानी कहो.....।

कहानी शुरू हुई—एक था राजा, उसकी एक रानी थी और रानी का एक लड़का था। उनके पास बहुत बड़ी सेना थी। बहुत-से शहर थे। बड़े-बड़े महल थे। महलों में बहुत-से नौकर-चाकर और बहुत-सा सुन्दर-सुन्दर कीमती सामान। राजा के मुँह से शब्द निकलते कि जो चाहते हो जाता। रानी इशारा करती तो सैंकड़ों दासियां दौड़ पड़तीं—नहलातीं, धुलातीं, शृङ्गार करतीं, खाना खिलातीं...

छोटी अमिता बोल उठी—रानी खाना अपने हाथ से नहीं खाती थी?

प्रमिला ने बड़प्पन से कहा—पगली। बीच में मत टोक। राजा रानी भी कहीं अपने-आप खाते हैं।

पिता मुस्कराकर आगे बढ़े—हां, तो उन्हें सब सुख था बाहर जाते तो आगे-पीछे सेना चलती। दरबार में बड़े-बड़े सरदार घण्टों सिर

झुकाये खड़े रहते....

असित ने कहा—बहुत बड़ा राजा था।

हां—पिता बोले—बहुत बड़ा राजा था, पर वह सुखी नहीं था। अन्दर ही अन्दर कोई दुख उसे कचोटता रहता था। उसके महल में कुछ लोग आते और चुपके-चुपके देर तक राजा से बातें करते रहते...

कौन थे वे लोग ?—अमला ने पूछा।

बेटी ! वे जासूस थे जो लोगों का भेद लेते फिरते और आकर राजा को बता जाते।

क्या कहते थे ?

कहते थे सेना प्रजा पर जुल्म करती है। जो उसके विरुद्ध बोलता है उसकी जबान काट ली जाती है, जो आंखें उठाकर देखता है उसकी आंखें फोड़ देते हैं, जो तंग आकर हाथ उठाते हैं उनके हाथ उड़ा दिये जाते हैं। प्रजा राजा को गालियां देती कि वह बहुत दुष्ट है, अत्याचारी है। आप तो भोग-विलास में मस्त रहता है और हम मरते हैं.....

लेकिन पिताजी—असित ने कहा—जुल्म तो सेना करती थी; लोग राजा को क्यों कोसते थे ?

प्रमिला बोली—राजा कहता होगा तभी तो सेना जुल्म करती होगी ?

पिता ने समझाया—देखो बेटा ! राजा कहे या न कहे, सेना उसकी थी। जो कुछ वह करती राजा का किया समझा जाता। इसीलिए प्रजा राजा को गालियां देती थी।

तो फिर...।

तो फिर बेटी। राजा ने बहुत सोचा, बहुत सोचा, और सोचकर एक दिन सब मंत्रियों को बुलाया। सरदार भी आये, सेनापति भी।

राजा ने उनसे कहा—जनता में असन्तोष फैल रहा है। पड़ोस का राजा उन्हें भड़काता है, विद्रोह का डर है।

मंत्रियों के मुख गंभीर हो उठे। परन्तु सेनापति ने अकड़ कर कहा—महाराज ! मैं विद्रोह को क्षण-मात्र में कुचल सकता हूं।

राजा हँसे—सेनापति ! तुम बहादुर हो, परन्तु शस्त्र-बल सदा काम नहीं आता। आज शायद हमें मंत्र-बल की जरूरत है।

बड़े मंत्री ने प्रसन्न होकर कहा—बेशक महाराज ठीक कहते हैं।

बस फिर तो सभी ने राजा की हां में हां मिलाई और निश्चय हुआ कि आगे से राजा और मंत्री के अलावा राज्य करने के लिए एक सभा होगी जिसमें कुछ प्रजा के प्रतिनिधि होंगे.....।

ऐसा क्यों पिताजी ?—अमला और असित ने एक साथ पूछा।

पिता बोले—देखो जब प्रजा के लोग राजा के साथ बैठकर राज्य की बात करेंगे तो न सेना अत्याचार कर सकेगी, न राजा मनमानी।

हां, हां सो तो है।

तो बस ऐसी सभा बन गई। लोग बड़े खुश हुए। राजा ने सुख की सांस ली। और सचमुच कुछ दिन तो बड़ा अच्छा लगा परन्तु धीरे-धीरे सभा के सभी आदमी सेना और राजा के आदमी बन गए। जासूसों ने खबर दी कि कुछ लोग मनमानी करते हैं। जिनके पास धन है, शक्ति है, वे छोटे लोगों को बन्धन में कसे हुए हैं। उन्हें न जीने के साधन सुलभ हैं न उनकी बहू-बेटियों की इज्जत सुरक्षित है। पहिले सेना राजा के नाम पर पाप करती थी। अब राजा और प्रजा के नाम पर करती है...।

तब...प्रमिला ने दिलचस्पी से पूछा।

तब एक दिन राजा ने गद्दी छोड़ दी।

गद्दी छोड़ दी...तो कौन राजा हुआ ?

कोई भी नहीं। राजा ने कहा—देश अब अपना राज आप ही संभालेगा। उसने सभा भंग कर दी। मंत्रियों को अलग कर दिया और जनता से कहा कि वे अपने-अपने इलाके से चुनकर प्रतिनिधि भेजें। वे राज्य के शासक होंगे।

रानी ने सुना तो रोई और हँसी। राजकुमार को गुस्सा आया। मंत्री और सेनापति तो राजा को मारने के लिए तैयार हो गए पर प्रजा में जैसे हर्ष की लहर दौड़ गई। जल्दी-जल्दी चुनाव हुआ, नई सभा बनी। वह प्रजा की सभा थी, उसने प्रजा की भलाई के लिए कानून बनाये और जैसे ही यह काम समाप्त हुआ राजा राजधानी से गायब हो गया। प्रमिला सोच रही थी परंतु अमला को कहानी में दिलचस्पी थी। वह बोली—राजा कहां गया, पिताजी ?

पिता ने कहा—राजा दूर राज्य की सीमा पर एक गाँव में बस गया। वहां उसने अपने को पढ़ानेवाला बताया। लड़कों को पढ़ाने लगा और शीघ्र ही सबका प्यारा बन गया.....

और रानी।

रानी राजा के साथ थी। वह साधारण औरत की तरह सब काम करती...

कि छोटी अमिता की नींद टूटी—रानी रोटी बनाती थी ?

हां बेटी ! रोटी बनाती, बरतन मांजती और घर झाड़ती बुहारती।

तो उसके हाथ दुखते होंगे ?

दुखते तो थे, पर वह दुख मानती नहीं थी, क्योंकि दुख तो जरा-सा था पर सुख बहुत था ! महल में कैदी की तरह रहती थी और फिर वहां इतनी औरतें होती हैं कि राजा किस-किस को देखे। यहां रानी अकेली थी। दिन भर काम करके जब राजा घर आता तो रानी मीठी-मीठी बातें करती, चरण धुलाती, खाना खिलाती। राजा हँसता, रानी खिलखिला उठती। हां; राजकुमार कुछ दिन अनमना-सा रहा परन्तु फिर वह भी नौकरों को भूल गया...।

लेकिन पिताजी—अमला बोली—लोग राजा को जानते नहीं थे ?

नहीं बेटी। राजा को आम लोग नहीं पहचानते। वह उनके साथ नहीं मिलता। शायद ही किसी ने राजा को अपनी पोशाक में देखा हो।

असित ने समझदार व्यक्ति की तरह सिर हिलाया—ठीक है, पिताजी ! परन्तु राज्य का क्या हुआ ?

हां बेटा । राज की बात ही कहूंगा । अब वहां सब कुछ जनता के हाथों में था परन्तु उनका कोई नेता नहीं था इसीसे वे धीरे-धीरे आपस में लड़ने लगे। बहुत आदमी थे, बहुत विचार थे । कुछ कहते यह टैक्स लगेगा । कुछ उसका विरोध करते । नतीजा यह हुआ कि जनता में फिर आतंक फैलने लगा । लोग फिर राजा को कोसने लगे...

राजा को क्यों ?

लोग कहते—वह कायर था राज छोड़ कर भाग गया । उसे चाहिए था, वहीं रहता और सभा को ठीक-ठीक रास्ता दिखाता । त्याग तो तभी कहलाता है जब सत्ता हाथ में लेकर उसे दूसरों की भलाई के लिए काम में लाया जाय । यही चर्चा राजा के गांव में भी चली । राजा सुनकर मुस्कराया । रानी से बोला—मैं फिर राजा बनूंगा ।

रानी हठात् चौंक पड़ी—राजा ! नहीं, नहीं । आप मजाक कर रहे हैं ।

मजाक नहीं, रानी । सच कहता हूं ।

क्यों.....?

क्योंकि प्रजा चाहती है ।

प्रजा आपको चाहती है ?

हां रानी ! प्रजा बिना नेता के नहीं रह सकती । उसे रास्ता दिखाने वाले की जरूरत है ।

लेकिन प्रजा तो राजा से नफरत करती थी ?

पुराने राजा से करती थी । नये से नहीं करेगी । क्योंकि नया राजा जबरदस्ती उन पर लादा नहीं जायगा । उसके पास न महल होगा न धन, न ऐश्वर्य ! उसकी सेवा के लिए नौकर-चाकरों की सेना नहीं होगी और न होंगी उसे लुभाने के लिए सुन्दरी नारियां.....।

रानी मुस्कराई—बड़ा विचित्र राजा होगा ।

राजा कहता रहा—वह साधारण जनकी तरह साधारण होगा। वह देश का होगा। देश खायगा, वह खायगा। देश की शक्ति उसकी शक्ति होगी। देश का ऐश्वर्य उसका ऐश्वर्य होगा। वह न भोगी होगा न त्यागी। होगा भोगेगा, न होगा तो तृष्णा दुश्चिन्ता उसे आलोड़ित न करेगी।

फिर राजा ने यही किया। उसने लोगों की हां में हां मिलाई—बेशक हमारा राजा कायर था। उसने शक्ति का उचित प्रयोग न करके त्याग करना ठीक समझा। त्याग का अर्थ भागना है और भागना है शुद्ध पवित्र कायरता। परन्तु भागा वे ही करते हैं जो अशक्त हैं और वह अशक्त था क्योंकि उसके पास जनबल नहीं था। वह निर्बल सत्ताधारी था, जो सदा अत्याचार करते हैं। जिनके पास शक्ति है वे सदा न्यायी और सदय होते हैं....।

बेशक—लोग बोले—आप ठीक कहते हैं। हमें ऐसे ही शक्तिशाली व्यक्ति को ढूंढ़ना चाहिए।

राजा बोला—नहीं, वह ढूंढ़े से नहीं मिलेगा, वह स्वयं आयेगा। और राजा ने ठीक कहा था, एक दिन वह स्वयं ही आया।

असित ने कहा—कैसे पिताजी ?

पिता बोले—वही बताता हूं; राजा अपने गांव का प्यारा था। वह पंचायत का प्रधान था। जिले की सभा में प्रतिनिधि था। अपनी विद्वत्ता और सेवा के कारण प्रांत की सभा में भी चुना गया। चुना क्यों न जाता, वह सच्चे दिल से प्रजा की भलाई चाहता था। उन दिनों देश के एक भाग में बड़े जोर का अकाल पड़ा। देखते-देखते लोग भूखे मरने लगे। घर वीरान हो गये। धीरे-धीरे सड़क लाशों से पट गई। मां-बाप को खोकर सैंकड़ों बच्चे अनाथ बन गये। माताओं के बेटे, पत्नियों के पति, बहिनों के भाई भूख से तड़प-तड़प कर मर गये। यहां तक हुआ कि गीदड़ और कुत्ते तक बच्चों को खाने लगे। मां-बाप ने अपने लाड़लों को आठ-आठ आने तक में बेच दिया...

पिता ऐसी तीव्रता से बोले कि बच्चों की अनुभूति जाग उठी।

असित ने पूछा—लेकिन पिताजी, यह भूख कहां से आई ?

अमला बोली—खाना कहां चला गया, पिताजी ?,

पिताजीने कहा—बेटा, बात यह थी कि वह प्रांत खेती पर जीता था। खेती होती थी वर्षा के कारण। सिंचाई का प्रबन्ध नहीं था। उस वर्ष वर्षा नहीं हुई। खेती सूख गई। जो कुछ थोड़ा बहुत अन्न था वह महाजन और सरकार के पेट में चला गया।

बड़े बुरे थे महाजन और सरकार !—अमला बोली।

हां बेटी। महाजन को सोने की जरूरत थी। वह मिट्टी का सोना बना-बना कर तिजोरी में भर रहा था।

असित ने कहा—पर पिताजी ! सोना क्या खाया जाता है।

शायद महाजन खाते हैं।

कैसे—अचरज से अमला बोली।

पिता हँसे—सोना खाने का एक तरीका होता है। हविस होती है न, जो पेट भरने पर भूख जगाये रखती है। वही हविस सोना खाती है। महाजनों ने जो कुछ भी अन्न पाया अपने गोदामों में भर दिया। सोलह सेर के गेहूं रुपये के दो सेर बिकने लगे। एक के आठ उन्हें मिले.....।

बड़े दुष्ट थे महाजन ! पर सरकार ने भी कुछ नहीं किया।

कुछ नहीं बेटा ! यह सच है वे प्रजा के प्रतिनिधि थे, पर न उनको कोई रास्ता सुझानेवाला था, न उनके पास चरित्र-बल था। मुनाफाखोरों से रिश्वत खाकर वे अपने सिद्धान्तों का भूल गये...।

तब।

तब हमारा राजा आगे आया। वह सब कुछ देख रहा था। वह जानता था चोर कौन है और सरकार ढीली क्यों है। उसने सभा में स्पष्ट कह दिया—सरकार चोरों की साथी है।

मंत्री क्रुद्ध हो गये—तुम झूठे हो, तुम्हें जेल में ठूंस दिया जायगा।

राजा ने कहा—कोई चिन्ता नहीं। केवल एक बार तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा। मैं तुम्हें दिखाऊंगा अन्न कहां है!

न दिखा सके तो...।

तो जेल—फांसी जो तुम चाहो।

मंत्री निरुत्तर हो गये। भय से उनके दिल कांप उठे। उन्होंने एक चाल चली। सबने मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया और नये मन्त्री चुने गये। राजा भी उनमें था। यह उनकी चाल थी कि मन्त्री बनकर वह उनका विरोध नहीं करेगा परन्तु खजा तो राजा था। मन्त्री बनते ही उसने चोर गोदामों पर हमला बोल दिया....।

अमला बोली—तब तो बड़ा अच्छा हुआ होगा, पिताजी।

हां बेटा! बड़ा अन्न मिला परन्तु विरोध भी बहुत हुआ। महाजनों ने तो राजा को मार डालने की कोशिश की। नगर के सबसे बड़े व्यापारी के घर जब धावा बोला गया तो राजा सबसे पहले अकेले वहां पहुंचे। गुण्डे तैयार थे। सेठ ने इशारा किया कि राजा को शूट कर दें परन्तु जैसे ही बन्दूक उठी उसका मालिक जमीन पर लेट गया। राजा और सेठ एक साथ चौंके। अचरज से उन्होंने देखा—सेठ के बड़े पुत्र के हाथ में पिस्तौल थी। उसने कहा—पिताजी! आपका शास्त्र कहता है जो अकेला खाता है, वह पापी होता है परन्तु जो दूसरे के मुख का ग्रास छीन कर खाता है, उसके सामने पापी भी निर्दोष है। आप दोनों से बढ़कर हैं। आप अपने त्राता को भी मार डालना चाहते थे। मैं चाहता था आपको मार डालूं। परन्तु नहीं, आप राज्य के दुश्मन हैं। आपका निर्णय वहीं होगा।

और राजा की ओर मुड़कर उसने कहा—आपको कष्ट करने की जरूरत नहीं है। चाबियां मेरे पास हैं, वे आप ले सकते हैं।

यह कहकर उसने गुच्छा राजा के सामने फेंक दिया और पिता के पास जा खड़ा हुआ, बोला—इस पाप में मेरा भी हिस्सा है। मैं राज्य का अपराधी हूं।

सेठ के प्राण सुन्न हो गये और खून पानी बन गया परन्तु राजा गर्व से मुस्करा उठा। उसने अभिमान से लड़के से कहा—राज्य को तुम्हारे जैसे अपराधियों पर नाज है। जिस प्रकार तुम्हारा अपराध अभूत-पूर्व है उसी प्रकार तुम्हारी सजा भी अभूतपूर्व होगी। तुम शीघ्र ही इस प्रान्त के मुख्य न्यायाधीश बनोगे।

और इतना कहकर राजा आगे बढ़ गया। वह लड़का अचरज से उन्हें देखता ही रह गया...।

यहीं आकर पिताजी ने कहानी समाप्त कर दी।

अमला और असित प्रसन्नता से भरकर बोले—बड़ा अच्छा राजा था और लड़का भी।

बेशक–पिता बोले—वे बड़े अच्छे थे। अच्छा अब सोओ, कल नई परी और राजकुमारी की कहानी सुनावेंगे।

: १६ :

रहमान का बेटा

क्रोध और वेदना के कारण उसकी वाणी में गहरी तलखी आ गई थी और वह बात-बात में चिनचिना उठता था। यदि उस समय गोपी न आ जाता तो सम्भव था वह किसी बच्चे को पीटकर अपने दिल का गुबार निकालता। गोपी ने आकर दूर से ही पुकारा—साहब सलाम भाई रहमान! कहो क्या बना रहे हो?

रहमान के मस्तिष्क का पारा सहसा कई डिग्री नीचे आ गया। यद्यपि क्रोध की मात्रा अभी भी काफी थी, बोला—आओ गोपी काका, साहब सलाम।

—बड़े तेज हो रहे हो, क्या बात है?

गोपी बैठ गया। रहमान ने उसके सामने बीड़ी निकाल कर रखी और फिर सुलगाकर बोला—क्या बात होगी, काका! आज कल के छोकरों का दिमाग बिगड़ गया है। जाने कैसी हवा चल पड़ी है। मां-बाप को कुछ समझें ही नहीं।

गोपी ने बीड़ी का लम्बा कश खींचा और मुस्कराकर कहा—रहमान! बात सदा ही ऐसी रही है। मुझे तो अपनी याद है। बाबा सिर पटक कर रह गये, मगर मैं चटशाला में जाकर नहीं दिया। अब बुढ़ापे में वे दिन याद आते हैं। सोचता हूँ, दो अच्छर पेट में पड़ जाते तो·····।

बीच में बात काटकर रहमान ने तेजी से कहा—तो काका, नशा

चढ़ जाता। अच्छरों में नाज से ज्यादा नशा होवे है। यह दो अच्छर का नशा ही तो है जो सलीम को उड़ाये लिये जाये है। कहते हैं इस बस्ती में मेरा जी नहीं लगे। सब गन्दे रहें हैं। बात करने की तमीज नहीं। चोरी करने से नहीं चूकें·····

गोपी चौंककर बोला—सलीम ने कहा ऐसे ?

—जी हां सलीम ने कहा ऐसे और कहा हम इंसान नहीं हैं, हैवान हैं। जैसे नाली में कीड़े बिलबिलाते हैं न, उसी तरह की हमारी जिन्दगी है।····कहते-कहते रहमान की आंखें चढ़ गईं। बदन कांपने लगा। हुक्का जिसे उसने अभीतक छुआ भी नहीं था उसको इतने जोर से पैर से सरकाया कि चिलम नीचे गिर पड़ी और आग बिखरकर चारों ओर फैल गई। तेजी से पुकारा—करीमन ! ओ हरामजादी करीमन ! कहां मर गई जाकर। ले जा इस हुक्के को। साला आज हमें गुण्डा कहवे है·····।

गोपी ने रहमान की तेजी देखकर कहा—उसका बाप स्कूल में चपरासी था न···।

—जी हां वही तो खराब करे है। पढ़ा नहीं था तो हर वक्त पढ़े लिखे के बीच रहवे था। मगर साले ने किया क्या ? भरी जवानी में हाथ फैलाकर मर गया। बीवी को कहीं का भी नहीं छोड़ा। न जाने किसके हाथ पड़ती, वह तो उसकी मां ने मेरे आगे धरना दे दिया। वह दिन और आज का दिन सिर पर रखा है। कह दे कोई सलीम रहमान की औलाद नहीं है पर वह बात है काका···

आगे जैसे रहमान की आंख में कहीं से आकर कुणक पड़ गई। जोर-जोर से मलने लगा। उसी क्षण शून्य में ताकते-ताकते गोपी ने कहा—सलीम की मां बड़ी नेकदिल औरत है।

रहमान एकदम बोला—काका फरिश्ता है ! ऐसी नेकदिल औरत कहां देखने को मिले हैं आजकल। क्या मजाल जो कभी पहिले शौहर का नाम लिया हो ? ऐसी जी जान से ख़िदमत करे है कि बस सिर

नहीं उठता। और काका, उसी का नतीजा है। तुमसे क्या कुछ छिपा है। कभी इधर उधर देखा है मुझे।

गोपी ने तत्परता से कहा—कभी नहीं रहमान, मुंह देखे की नहीं, ईमान की बात है। पांच पंचों में कहने को तैयार हूं।

—और रही चोरी की बात! किसी के घर डाका मारने कौन जावे है, यूं खेत में से घास पात तुम भी लावो ही हो, काका।

गोपी बोला—हां लावूं हूं। इसमें लुकाव की क्या बात है। और लावें क्यों न? हम क्या इतने से भी गये? बाबू लोग रोज जेब भर कर घर लौटे हैं। सच कहूं रहमान! तनखा बांटते वक्त अंगूठा पहिले लगवा लेवे हैं और पैसों के वक्त किसी गरीब को ऐसा दुत्कार देवे हैं कि बेचारा मुंह ताकता रह जावे है। इस सत्यानासी राज में कम अंधेर नहीं है पर बेमाता ने हमारी सरकार की किस्मत में न जाने क्या लिख दिया है, दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होवे है। गांधी बाबा की कुछ भी पेश नहीं आवे।

रहमान ने सारी बात बिना सुने उसी तेजी से कहा—बाबू क्यों? वे जो अफसर हैं साब बहादर, वे क्या कम हैं? किसी चीज पर पैसे नहीं डाले हैं। और काका! यह कल का छोकरा सलीम हमें गुण्डा बतावे है! गुण्डे साले तो वे हैं। सच काका! कलब में सिवाय बद-माशी के वे करें क्या हैं। शराब वे पियें, जुआ वे खेलें और····!

—और क्या? हमारे साब के पास आये दिन कलब का चपरासी आवे है। कभी सौ, कभी डेढ़ सौ, सदा हारे ही हैं पर रहमान, उसकी मेम बड़ी तकदीर की सिकन्दर है। जब जावे सौ सवा सौ खींच लावे है।

—मेम साब! काका तुम क्या जानो? उनकी बात और है। जितने ये साब बहादर हैं और साब क्यों, बड़े-बड़े वकील, बालिस्टर, लाला, सभी आजकल कलब जावे हैं। मुसलमान को शराब पीना हराम है पर वहां बैठ कर विस्की, जिन, पौरट, सेरी सब चढ़ा जावे

हैं। औरतें ऐसी गिर गई हैं कि पराये मरद कमर में हाथ डालकर लिये फिरे हैं और वे हँस-हँस कर खिलर-खिलर बातें करे हैं। काका! जितनी देर वे वहां रहवे हैं वे यही कहते रहे हैं—उसकी बीवी खूबसूरत है। इसकी जोरदार है। सरमा खुशकिस्मत है, रफीक की लौंडिया उसके घर जावे है। गुप्ता की बीवी उसके पास रहे है। सारा वक्त यही घुसर पुसर होती रहे और मौका देखा कोई किसी के साथ उड़ चला। उस दिन जीत की खुशी में ड्रामा हुआ था। पुलिस के कप्तान लालाजी बने थे। वे लालाजी बनकर लोगों को हँसाते रहे और मेजर साहब उनकी बीवी को लेकर डाक बंगले की सैर करने चले गये। ये है बड़े लोगन का चाल-चलन। ये हैं हमारे आका, हमारे भाग की लकीर इन्हीं की कलम से खिंचे हैं।

गोपी ने फिर जोर से बीड़ी का कश खींचा और गम्भीरता से कहा—रहमान! देखने में जो जितना बड़ा है असल में वह उतना छोटा है।

—और खोटा भी।

—और क्या।

—और इन्हीं के लिए सलीम हमें बदतमीज, बदसहूर, बे-अकल, न जाने क्या-क्या कहवे है। मैंने भी सोच लिया है आज उससे फैसला करके रहूँगा। मैंने हमेशा उसे अपना समझा है। नहीं तो···नहीं तो···।

गोपी ने अब अपना डण्डा उठा लिया, बोला—रहमान! कुछ भी हो सलीम तेरा ही लड़का माना जावे है। जवान है। अबे तबे से न बोलना। समझा। आज कल हवा ही ऐसी चल पड़ी है। और चली कब नहीं थी, फरक इतना है पहिले मार-खाकर बोलते नहीं थे अब सीधे जवाब देवें हैं···

रहमान तेज ही था। कहा—मैं उसके जवाबों की क्या परवा करूं, काका। जावे जहन्नुम में। मेरा लगे क्या है?···और काका।

मैं उसे मारूंगा क्यों ? मेरे क्या हाथ कुले हैं। मैं तो उससे दो बात पूछूंगा। बस रास्ता इधर था उधर। और काका, मुझे उस साले की जरा भी फिकर नहीं है। फिकर उसकी मां को है। यूं तो औलाद और क्या कम है पर जरा—यही कुछ सहूरदार था··· काका! सोचता था पढ़ लिखकर कहीं मुन्शी बनेगा, जात बिरादरी में नाम होगा लेकिन लिखा क्या किसी से मिटा है ?

गोपी बोला—हां रहमान। लिखा किसी से नहीं मिटा। अब चाहे तो मालिक भी नहीं मेट सकता। ऐसी गहरी लकीर बेमाता ने खींची है। सो भइया। अपनी इज्जत अपने हाथ है। ज्यादा कुछ मत कहना। पढ़ों लिखों को गैरत जल्दी आ जावे है। समझा···।

—समझा काका।

और फिर गोपी डण्डा उठा, घास की गठरी कन्धे पर डाल, साब सलाम करके चला गया। रहमान कुछ देर वहीं शून्य में बैठा धुंधले होते वातावरण को देखता रहा। मन में उमड़ घुमड़ कर विचार आते और आपस में टकरा कर शीघ्रता से निकल जाते। वे झाल के गिरते पानी के समान थे, गहरे और तेज। इतने तेज कि उफन कर रह जाते। उनका तात्कालिक मूल्य कुछ नहीं था इसीलिए उसके मन की झुंझलाहट और गहरी होती गई। करुणा और विषाद, कोई उसे कम नहीं कर सका। आखिर वह उठा और अन्दर चला गया। घर में सन्नाटा था। बच्चे अभी तक खेल कर नहीं लौटे थे। उसकी बीवी रोटियां सेंक रही थी। सालन की खुशबू उसकी नाक में भर उठी। उसने एक नजर उठा कर अपनी बीवी को देखा—शान्त चित्त वह काम में लगी है। उसके कानों के लम्बे बाले रोटी बढ़ाते समय वेग से हिलते हैं। उसके सिर का गन्दा कपड़ा खिसक कर कन्धे पर आ पड़ा है। यद्यपि जवानी बीत गई है तो भी चेहरे का भराव अभी हल्का नहीं पड़ा है। गोरी न होकर भी वह काली नहीं है। उसकी आंखों में एक अजीब नशा है। वही नशा उसे बरबस खूबसूरत बना देता है। जिसकी ओर वह

देख लेती है एक बार तो वह ठिठक ही जाता है। रहमान सहसा ठिठका—उन दिनों इन्हीं आंखों ने मुझे बेबस बना दिया था। नहीं तो·····।

सहसा उसे देखकर उसकी बीवी बोल उठी—इतने तेज क्यों हो रहे थे। गैरों के आगे क्या इस तरह घर की बात कहे हैं।

रहमान कुछ तलखी से बोला—गैरों के आगे क्या? पानी अब सर से उतर गया है। कल को जब घर से निकल जावेगा तब क्या दुनिया कानों में रुई ठूंस लेगी या आंखें फोड़ लेगी।

बीवी को दुख पहुंचा। बोलीं—बाप बेटे क्या दुनिया में कभी अलग नहीं होते?

—कौन कहे है वह मेरा बेटा है?

—और किसका है?

—मैं क्या जानूं?

—जरा देखना मेरी तरफ! मैं तो सुनूं।

तिनक कर उसने कहा—क्या सुनेगी? मेरा होता तो क्या इस तरह कहता। जबान खींच लेता साले की।

देखूंगी किस-किस की जबान खींचोगे। अभी तक तो एक भी बात नहीं सहारता।

—बच्चे और जवान बराबर होवे हैं।

—नहीं होवें पर पूत के पांव पालने में नजर आ जावे हैं और फिर वही कौन-सा जवान है? अल्हड़ उमर है। एक बात मुंह से निकल गई तो उसी को सिर पर उठा लिया, तुम्हारा नहीं तभी तो। अपना होता तो क्या इस तरह ढोल पीटते। अपनों के हजार ऐब नजर नहीं आवे हैं। दूसरों का एक जरा-सा पहाड़ बन जावे है.....

रहमान कुछ भी हो इतना मूर्ख नहीं था। उसने समझ लिया, उसने बीवी के दिल को दुखाया है पर वह क्या करे? सलीम से उसे क्या कम मोहब्बत है। पेट काट कर उसे रहमान ने ही तो स्कूल भेजा है।

उसके लिए वह अब भी कभी बड़े बाबू से, कभी डिप्टी से; कभी बड़े साहब से गिड़-गिड़ाता रहता है। इतनी गहरी मोहब्बत है तभी तो इतना दुख है। कोई गैर होता तो...।

तभी उनके चारों बच्चे बाहर से शोर मचाते हुए आ पहुंचे। वे धूल मिट्टी से लिथड़े पड़े थे। परन्तु गन्दे और अर्द्धनग्न होने पर भी प्रसन्न थे। सबसे बड़ी लड़की लगभग बारह वर्ष की थी। आते ही खुशी-खुशी बोली—अम्मीं! आज हम भइया की जगह गये थे।

रहमान को कुछ अचरज हुआ पर वह जला भुना बैठा था। कड़क कर बोला, कहाँ गई थी चुड़ैल?

लड़की सहम गई। घबरा कर बोली—भइया की जगह।

—कौनसी जगह?

—जहाँ भइया जाते हैं। दूर...।

छोटा लड़का जो दस बरस का था एक दम बोला—अब्बा। वहाँ बहुत सारे आदमी थे।

तीसरा भी आठ बरस का लड़का था। आगे बढ़ आया, कहा—वहाँ लैक्चर हुए थे?

रहमान अचकचाया—लैक्चर।

लड़की ने कहा—हाँ अब्बा! लैक्चर हुए थे। भइया भी बोले थे। लोगों ने बड़ी तालियाँ पीटीं।

अम्मीं का मुख सहसा खिल उठा। गर्व से एक बार रहमान को देखा। फिर बोली—क्या कहा उसने?

लड़की जो मुरझा चली थी अब दुगने उत्साह से कहने लगी—अम्मीं, भइया ने बहुत सी, बहुत सी, बातें कही थीं। हम गन्दे रहते हैं, हम अनपढ़ हैं, हम चोरी करते हैं। हमें बोलना नहीं आता। हमें खाने को नहीं मिलता।

रहमान चिहुंक कर बोला—देखा तुमने।

बीवी ने तिनक कर कहा—सुनो तो जरा। हाँ और क्या, लाली?

लड़का बोला—मैं बताऊँ अम्मी ! भइया ने कहा था इसमें हमारा ही कसूर है।

हाँ—लड़की बोली—उन्होंने कहा था बड़े लोग हमें जान-बूझकर नीचे गिराते जाते हैं और हम बोलें ही नहीं।

और फिर अब्बा की तरफ मुड़कर बोली—क्यों अब्बा ! वे लोग कौन हैं ?

अब्बा तो बुत बने बैठे थे क्या कहते ?

लड़का कहने लगा—अब्बा ! और जो उनमें बड़े आदमी थे सबने यही कहा—हम भी आदमी हैं ! हम भी जियेंगे। हम अब जाग गए हैं।

अम्मी ने एक लम्बी साँस खींची। चेहरा प्रकाश से भर उठा—सुनते ही सलीम की बातें।

रहमान अब भी नहीं बोला। लड़की बोली—और अम्मी ! भइया ने मुझ से कहा था मैं अब घर नहीं आऊँगा।

—नहीं आएगा ?

—हाँ अम्मी।

रहमान की निद्रा टूटी—क्यों नहीं आयगा ? क्योंकि हम गन्दे हैं ?

—नहीं अब्बा !—लड़की अब आप-ही-आप कुछ गम्भीरता से बोली—भइया ने मुझ से कहा था मैं अब इस घर में नहीं रहूंगा। यहाँ नया घर लूंगा, बहुत साफ। अब्बा से कह दीजो वहाँ रहने से गड़बड़ हो सकती है। हम लोगों के पीछे पुलिस लगी रहती है। वहाँ आवेंगी तो शायद अब्बा की नौकरी छूट जावे। और फिर व्यग्रता से बोली—क्यों अब्बा ! पुलिस क्यों आवेगी... ?

लेकिन अब्बा हों तो बोलें। उनके तो सिर में भूचाल आ गया है। वह घूम रहा है, घूम रहा है, रुकता ही नहीं...

Durga Sah Municipal Library,
Nainital,
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी